# प्राकृत भाषा एवं साहित्य

**(11 वीं कक्षा)**

BSER

# पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

**संयोजक एवं लेखक**
**प्रो. उदय चन्द्र जैन**
**(सेवानिवृत्त)**
जैनविद्या एवं प्राकृत विभाग
मोहनलाल सु,खाड़िया विश्वविद्यालय,
उदयपुर

**लेखक**
**प्रो. जिनेन्द्र कुमार जैन**
**अध्यक्ष**
जैनविद्या एवं प्राकृत विभाग
मोहनलाल सु,खाड़िया विश्वविद्यालय,
उदयपुर

**लेखक**
**प्रो. पी. सी. जैन**
**(सेवानिवृत्त)**
जैनविद्या अनुशीलन केन्द्र
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर

BSER

# भूमिका

भारतीय वाङ्.मय में सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, दार्शनिक तथा धार्मिक तत्त्वों के गूढतम रहस्य छिपे हुए हैं। हमारे ऋषियों, महर्षियों, आचार्यों की सद्वाणी से आप्लावित यह वाङ्.मय भारत की धरोहर के रूप में जाना जाता है। इस साहित्य का लेखन आज से लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व प्रारम्भ हो गया था। संस्कृत भाषा में वेद, आगम, उपनिषद् बाह्मण, अरण्यक आदि साहित्य का लेखन हुआ तथा प्राकृत भाषा में जैनागम, मूलसूत्र, व्याख्या साहित्य, शिलालेख, काव्य, नाटक आदि विधाएँ प्राप्त होती हैं। अतः यह कहना कोई अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि संस्कृत एवं प्राकृत भाषा का प्रयोग अतिप्राचीन काल से ही हमारे देश में होता रहा है।

भाषा–विकास–काल की दृष्टि से देखें तो विश्व की समस्त भाषाओं के भेदक्रम में भारतीय आर्यभाषा परिवार के अर्न्तगत संस्कृत एवं प्राकृत दोनों ही भाषाओं का अस्तित्त्व है। ईसा की छठी शताब्दी पूर्व से लेकर लगभग दसवीं / बारहवीं शताब्दी तक का समय प्राकृत भाषा एवं साहित्य के लेखन का काल माना जाता है। इस युग में प्राकृत साहित्य विविध विधाओं में लिखा गया। लेकिन इससे पहले से ही वैदिक काल तथा उससे भी पूर्व से लेकर प्राकृत भाषा का प्रयोग निरन्तर बोलचाल के रूप में होता रहा है। इसके प्रमाण हमें वेदों में प्राप्त होते हैं। ऐसी कोई भी विधा नहीं नहीं होगी, जिसमें प्राकृत साहित्य लिखा नहीं गया हो।

प्रस्तुत पुस्तक राजस्थान शिक्षा मण्डल, अजमेर के प्राकृत भाषा एवं साहित्य के 11 वीं कक्षा के छात्र–छात्राओं के लिए तैयार की गई है, जिसमें उन्हें प्राकृत भाषा, साहित्य, व्याकरण, वाक्य–बोध के प्रति मार्ग–दर्शन दिया गया है तथा स्वयं शिक्षक के रूप में भी यह पुस्तक उन्हें कारगर साबित होगी, हम ऐसी कामना करते हैं। प्राकृत भाषा एवं साहित्य का सामान्य परिचय छात्र–छात्राओं को हो सके, इसी उद्देश्य से यह पुस्तक तैयार की गई है।

**– संयोजक एवं लेखकगण**

BSER

# अनुक्रमणिका

भूमिका

प्रकाशकीय


| | | | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| 1. | **अपठित** | | **01—15** |
| 2. | **रचनात्मक तथा व्यावहारिक लेखन** | | **16—19** |
| (I) | पठित प्राकृत सूक्तियों अथवा सुभाषितों का 50 से 60 शब्दों में प्राकृत में विशदीकरण | | 17 |
| (II) | पाँच हिन्दी अथवा अंग्रेजी वाक्यों का प्राकृत में अनुवाद | | 18 |
| (III) | पाँच प्राकृत के वाक्यों का हिन्दी अथवा अंग्रेजी में अनुवाद | | 19 |
| 3. | **व्यावहारिक व्याकरण** | | **20—85** |
| (I) | प्राकृत शब्द रूप सभी विभक्तियों में : **पुल्लिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग** | | 21 |
| (II) | प्राकृत क्रिया प्रकरण (रूप तीनों कालों में एवं आज्ञा, विधि में) एवं विशेषण ज्ञान | | 36 |
| (III) | पूर्व पठित तथा अन्य क्रियाओं के वर्तमान, भूतकाल, भविष्यत्काल एवं आज्ञा के रूप एवं संधि व समास के प्रयोग | | 48 |
| (IV) | प्राकृत के प्रमुख अव्ययों का परिचय एवं कर्मणि प्रयोग | | 55 |
| (V) | सर्वनामों का प्रयोग ज्ञान | | 58 |
| (VI) | प्राकृत भाषा का सामान्य परिचय एवं भेद—प्रभेद | | 63 |
| 4. | **(क) प्राकृत गद्य पाठ (पाठ्य पुस्तक प्राकृत गद्य सोपान)** | | **86—107** |
| | 1. लोहस्स न अंतो | (उत्तराध्ययनटीका) | 87 |
| | 2. मेरुपभस्स हत्थिणो अणुकंपा | (ज्ञाताधर्मकथा) | 91 |
| | 3. अग्गिसम्मस्स पराहवो | (समराइच्चकहा) | 96 |
| | 4. धणदेवस्य पुरिसत्थं | (कुवलयमालाकहा) | 102 |
| | 5. जहा गुरु तहा सीसो | (रयणचूडरायचरियं) | 106 |
| | **(ख) प्राकृत पद्य पाठ (पाठ्य पुस्तक प्राकृत काव्य मंजरी)** | | **108—155** |
| | 1. कुमाराण बुद्धि परिक्खणं | (अभयक्खाणयं) | 109 |
| | 2. सहलं मणुजम्मं | (कुम्मापुत्तचरियम्) | 115 |
| | 3. कुसलो पुत्तो | (आख्यानमणिकोश) | 121 |
| | 4. साहसी अगडदत्तो | (प्राकृत कथा संग्रह) | 127 |
| | 5. अहिंसओ बाहुबली | (पउमचरियं) | 133 |
| | 6. जीवन मुल्लं | (वज्जालग्गं में जीवनमूल्य) | 138 |
| | 7. जीवण ववहारो | (अर्हत्प्रवचन) | 144 |
| | 8. रत्नत्रय अधिकार (प्रथम अधिकार) | (कुन्दकुन्द का कुन्दन) | 150 |


BSER

# पाठ्यक्रम

## प्राकृत भाषा

**समय 3.15 घण्टे** **पूर्णांक–100**

| अधिगम क्षेत्र | अंक |
|---|---|
| अपठित | 10 |
| रचनात्मक तथा व्यावहारिक लेखन | 30 |
| व्यावहारिक व्याकरण | 35 |
| पाठ्य पुस्तक | 25 |

**1. अपठित गद्यांश** **10**

अपठित गद्यांश/गाथाओं के अंश की 50 से 60 शब्दों में व्याख्या (प्राकृत में)

**2. रचनात्मक तथा व्यावहारिक लेखन** **30**

**(I)** पठित प्राकृत सूक्तियों अथवा सुभाषितों का 50 से 60 शब्दों में प्राकृत में विशदीकरण 10

**(II)** पाँच हिन्दी अथवा अंग्रेजी वाक्यों का प्राकृत में अनुवाद 10

**(III)** पाँच प्राकृत के वाक्यों का हिन्दी अथवा अंग्रेजी में अनुवाद 10

**3. व्यावहारिक व्याकरण** **35**

**(I)** निम्नलिखित प्राकृत शब्द रूप सभी विभक्तियों में : 03

**पुल्लिंग :** बाल, पुरिस, छत्त, सीस, णर, निव, सुधि, कवि,
मुणि, भाणु, सिसु, साहु, पिउ, गुरु एवं तरु।

**स्त्रीलिंग :** बाला, माला, सरिआ, कन्ना, निसा, जुवई, रई,
साड़ी, इत्थी, दासी, बहु, धेणु, विज्जु, महु, सासू।

**नपुंसकलिंग** : णयर, फल, पु प, कमल, कम्म, धण, मित्त, वारि, दाहि, वत्थु एवं महु।

**(II)** निम्नलिखित प्राकृत क्रिया रूप तीनों कालों में एवं आज्ञा, विधि मे : 03

भण, जाण, इच्छा, पिव, गच्छ, खेल, हस, पढ़, लेह, सुण,
भुंज, णच्च, दा, णे, हो एवं अस।

**(III)** पूर्व पठित तथा निम्नलिखित क्रियाओं के वर्तमान, 03
भूतकाल, भविष्यत्काल एवं आज्ञा के रूप में :

**(क)** पास, धाव, णम, चिंत, चल, भम, जय, सेव, भण, पेस, कंद, कीण, पाल,
सीख, गज्ज, पस्स, कड्ढ, छिन्न, दह, सोह, पड एवं उट्ठ।

**(ख)** पूर्व पठित तथा निम्नलिखित संज्ञा शब्दों के सभी विभक्तियों के रूप :03
पुल्लिंग : बुह, सीअ, मिअ, मोर, जीव, कुलवइ, हत्थि, जागि, नाणि, पक्खि, मंति,
रिउ, जन्तु, पसु एवं भिक्खु।

BSER

स्त्रीलिंग : सुण्हा भारिआ, दिसा, गिरा, सई कुमारी, बहिणी, तरुणी, असी, अंगुली, चंचु, गउ, रज्जु।

**नपुसंकलिंगः** घर, खेत, सत्थ, सर, सुह, दुह, नयण, अट्ठि, अक्ख, अंसु।

**(ग)** निम्नांकित कृदन्त रूपों एवं विशेषणों का प्रयोग ज्ञान : 3

(तु, ऊण, अव्व, न्त, माण, अणीअ, स्स अ, त्त, त्तण, इल्ल प्रत्ययों से बनने वाले कृदन्त रूप) 3

**(घ)** कर्मणि प्रयोग ज्ञान 3

**(ङ)** संधि एवं समासों का प्रयोग ज्ञान 2

**(IV)** प्राकृत के प्रमुख अव्ययों का परिचय तथा ''इज्ज'' से बनने वाले सामान्य कर्मणि प्रयोग 3

**(V)** सर्वनामों का प्रयोग ज्ञान : अम्ह, तुम्ह, त, क, ज, इम 2

**(VI)** प्राकृत भाषा का सामान्य परिचय एवं प्राकृत के प्रमुख भेदो 10

**4. पाठ्य पुस्तक** **25**

निम्नांकित पाठ्य सामग्री पर सामान्य प्रश्न दिये जायेंगे, जिनके उत्तर हिन्दी या अंग्रेजी में देना है।

**निर्धारित प्राकृत गद्य पाठ (पाठ्य पुस्तक प्राकृत गद्य सोपान)** **10**

| | | |
|---|---|---|
| 1. | लोहस्स न अंतो | (उत्तराध्ययनटीका) |
| 2. | मेरुपभस्स हत्थिणो अणुकंपा | (ज्ञाताधर्मकथा) |
| 3. | अग्गिसम्मस्स पराहवो | (समराइच्चकहा) |
| 4. | धणदेवस्य पुरिसत्थं | (कुवलयमालाकहा) |
| 5. | जहा गुरु तहा सीसो | (रयणचूडरायचरियं) |

**निर्धारित प्राकृत पद्य पाठ (पाठ्य पुस्तक प्राकृत काव्य मंजरी)** **15**

| | | |
|---|---|---|
| 1. | कुमाराण बुद्धि परिक्खणं | (अभयक्खाणयं) |
| 2. | सहलं मणुजम्मं | (कुम्मापुत्तचरियं) |
| 3. | कुसलो पुत्तो | (आख्यानमणिकोश) |
| 4. | साहसी अगडदत्तो | (प्राकृत कथा संग्रह) |
| 5. | अहिंसओ बाहुबली | (पउमचरियं) |
| 6. | जीवन मुल्लं | (वज्जालग्गं में जीवनमूल्य) |
| 7. | जीवण ववहारो | (अर्हत्प्रवचन) |
| 8. | रत्नत्रय अधिकार (प्रथम अधिकार)(कुन्दकुन्द का कुन्दन) | |

**निर्धारित संदर्भ पुस्तकें–**

1. प्राकृत काव्यमंजरी (पाठ 1 से 10, 13, 15, 21, 22, 24, 26 एवं 29)
   प्रकाशक : प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर (1962)
2. प्राकृत मार्गोपदेशिका, पं. बेचरदास, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
3. प्राकृत प्रबोध– डॉ. नेमीचन्द शास्त्री, चौखम्भा विद्या प्रकाशन, वाराणसी

BSER

4. प्राकृत काव्य सौरभ—तारक गुरु ग्रन्थालय, उदयपुर
5. कुन्दकुन्द का कुन्दन—श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान वीरोदय नगर, सांगानेर, जयपुर
6. प्राकृत गद्य सोपान (पाठ नं. 1, 2, 3, 4, 6, 8, 15, 18, 21, 24 एवं 26)
   प्रकाशक : प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर (1983)
7. सरल प्राकृत व्याकरण — डॉ. राजा राम जैन, प्राच्य भारती प्रकाशन, आरा
8. प्राकृत वाक्य रचना बोध — युवावार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं
9. प्राकृत स्वयं शिक्षक — प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर (1982)
10. प्राकृत रचनोदय — न्यू भारतीय पुस्तक प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली (2013)

BSER

# 1. अपठित गद्यांश (प्राकृत)

BSER

# अपठित गद्यांश (प्राकृत)

## 1. सिप्पीपुत्तस्स कहा

*इस पाठ का मूल उद्‌देश्य कर्म के प्रति रुचि उत्पन्न करना है। धर्म, अर्थ,काम एवं मोक्ष इन चार पुरुषार्थों का जीवन में अत्यधिक महत्त्व है। जिस व्यक्ति का जीवन कर्म एवं पुरुषार्थ से हीन होता है, वह समाज में कुछ नहीं कर पाता। जब्कि आचारवान, श्रद्धावान व कर्मवान सदैव जगत् में सुखी रहते हैं।* ***'शिल्पी पुत्र का कथानक'*** *नामक पाठ से यह शिक्षा मिलती है कि जीवन में धर्म का आश्रय अत्यन्त आवश्यक है। जितनी जल्दी हो सके हमें अपने जीवन में कर्म को अपना लेना चाहिए, क्योंकि कर्म को अपनाये बिना अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकते। इस दृष्टि से हमें हर कर्म में परिपक्व होना चाहिए।*

**पाठ—परिचय**

श्रमण भगवान् महावीर ने अपने उपदेशों में प्राकृत भाषा का प्रयोग किया तथा उपदेशों को प्रभावी बनाने की दृष्टि से कथाओं का आश्रय उन्होंने लिया। इसी शृंखला में आचार्यों ने भी उपदेशों में कथाओं का आश्रय लिया है। **'शिल्पी पुत्र का कथानक'** भी जनसभाओं के रूप में प्रचलित होने के कारण प्राकृत भाषा के विद्वान् आचार्य श्री विजयकस्तूर सूरीश्वर जी म. सा. ने इस कथा को सृजित किया है तथा जिसे मुनि श्री जयचन्द विजय म. सा. ने **'पाइयविण्णाण कहा'** नामक कथासंग्रह में सम्पादित किया है मास्तर जसवन्तलाल गीरधरलाल, अहमदाबाद से ई0 1967 में प्रकाशित यह कथा हमें यह शिक्षा देती है कि हमें सदैव *पुरुषार्थ एवं* कर्म करते रहना चाहिए, जिससे हम समाज में अपना अस्तित्त्व बनाए रख सकें।

**(मूल पाठ)**

**पिउणा सिक्खिओ पुत्तो पारं जाइ कलद्धिणो।**
**वण्णिओ जइ नो होज्जा जह सिप्पिअअंगओ।।**

अवंतीए पुरीए इंददत्तो नाम सिप्पिवरो अहेसि, सो सिप्पकलाहिं सव्वंमि जयंमि पसिद्धो होत्था। इमस्स सरिच्छो अन्नो को वि नत्थि। एयस्स पुत्तो सोमदत्तो नाम। सो पिउस्स सगासंमि सिप्पकलं सिक्खंतो कमेण पिउराओ वि अईव सिप्पकलाकुसलो जाओ। सोमदत्तो जाओ जाओ पडिमाओ निम्मवेइ, तासु तासु पिया कंपि भुल्लं दंसेइ, कया वि सिलाहं न कुणेइ। तओ सो सुहुमदिट्ठीए सुहुमसुहुमं सिप्पकिरियं कुणेऊण पियरं दंसेइ, पिया वि तत्थ वि कंपि खलणं दरिसेइ, 'तुमए सोहणयरं सिप्पं कयं' ति न कयाइ तं पसंसेइ। अपसंसमाणे पिउम्मि सो चिंतेइ—'मम पिआ मज्झ कलं कहं न पसंसेज्जा?' तओ एआरिसं उवायं करेमि, जेण पियरो में कलं पसंसेज्ज।

एगया तस्स पिआ कज्जप्पसंगेण गामंतरे गओ, तया सो सोमदत्तो सिरिगणेसस्स सुंदरयमं पडिमं काऊण, पडिमाए हिट्ठंमि गूढं नियनामंकियचिन्हं करिऊण, तं मुत्तिं नियमित्तद्दारेण भूमीए अंतो निक्खेव कारेइ। कालंतरे गामंतराओ पिया

समागओ। एगया तस्स मित्तो जणाणमग्गओ एवं कहेइ–'अज्ज मम सुमिणो समागओ, तेण अमुगाए भूमीए गणेसस्स पहावसालिणी पडिमा अत्थि।' तथा लोगेहिं सा पुढवी खणिआ, तीए पुहवीए गणेसस्स सुंदरयमा अणुवमा मुत्ती निग्गया। तद्दंसणत्थं बहवे लोगा समागया, तीए सिप्पकलं अईव पसंसिरे।

तया सो इंददत्तो वि सपुत्तो तत्थ समागओ। तं गणेसपडिमं दट्ठूणं पुत्तं कहेइ–"हे पुत्त! एसच्चिअ सिप्पकला कहिज्जइ। केरिसी पडिमा निम्मविआ, इमाए निम्मावगो खलु धण्णयमो सलाहणिज्जो य अत्थि। पासेसु, कत्थ वि भुल्लं खुण्णं च अत्थि? जइ तुमं एआरिसी पडिमं निम्मवेज्ज, तया ते सिप्पकलं पसंसेमि, नन्नहा।"

पुत्तो वि कहेइ–"हे पियर! एसा गणेसपडिमा मम कया। इमाए हिट्ठंमि गुत्तं मए नामंपि लिहिअमत्थि।" पिआवि लिहिअनामं वाइऊण खिज्जहियओ पुत्तं कहेइ–"हे पुत्त! अज्जयणाओ तुं एरिसं सिप्पकलाजुत्तं सुंदरयमं पडिमं कया वि न करिस्ससि, जओ हं तव सिप्पकलासु भुल्लं दंसतो, तया तुमं पि सोहणयरकज्जकरणतल्लिच्छो सण्हं सण्हं सिप्पं कुणंतो आसि, तेण तव सिप्पकलावि वड्ढती हुवीअ। अहुणा 'मम सारिच्छो नन्नो' इह मंदूसाहेण तुम्ह एआरसी सिप्पकला न संभविहिइ।" एवं सो सरहस्सं पिउवयणं सोच्चा पाएसु पडिऊण पिउत्तो पसंसाकरावणरूवनिआवराहं खामेइ, परंतु सो सोमदत्तो तओ आरब्भ तारिसिं सिप्पकलं काउं असमत्थो जाओ।

उवएसो **दिट्ठंतं सिप्पिपुत्तस्स नच्चा गुणगणप्पयं। पुज्जाणं वयणं सोच्चा पडिऊलं न चिंतह।।**

### (हिन्दी अर्थ)

### शिल्पी–पुत्र की कथा

पिता के द्वारा सिखाया जाता हुआ कला की सम्पदा से युक्त पुत्र पार पा जाता, यदि आत्मश्लाघा नहीं करता, जैसे शिल्पी का पुत्र।

अवन्ती नगरी में इन्द्रदत्त नाम का श्रेष्ठ शिल्पी था (रहता था)। वह शिल्पकलाओं से सम्पूर्ण जगत् में प्रसिद्ध था। इसके समान दूसरा कोई भी नहीं था। इसका सोमदत्त नाम का पुत्र (था)। वह पिता के पास शिल्पकला सीखता हुआ क्रमशः पिता से भी शिल्पकला में अधिक कुशल हो गया। सोमदत्त जिन–जिन प्रतिमाओं को बनाता है, उनमें पिता कुछ भी (कोई–न–कोई) भूल दिखाता था, कभी भी प्रशंसा नहीं करता। तब वह सूक्ष्म दृष्टि से (बारीक–बारीक) शिल्पक्रिया करके पिता को दिखाता, पिता भी वहाँ पर कुछ स्खलना दिखा देता, 'तुमने सुन्दरतर शिल्प किया' ऐसा कभी भी उसकी प्रशंसा नहीं करता था। पिता के द्वारा प्रशंसा नहीं किये जाने पर वह सोचता है–मेरा पिता मेरी कला की प्रशंसा क्यों नहीं करता? अतः ऐसा उपाय करूँ, जिससे पिता मेरी कला की प्रशंसा करे।

एक बार उसका पिता कार्य के प्रसंग से अन्य ग्राम में गया, तब वह सोमदत्त श्रीगणेश की सुन्दरतम प्रतिमा बनाकर, प्रतिमा के नीचे गुप्त रूप से अपने नाम को अंकित कर उस मूर्ति को अपने मित्र के द्वारा भूमि के भीतर गड़वा दिया। कालान्तर में ग्रामान्तर से पिता आ गया। एक बार उसका मित्र लोगों के आगे ऐसा कहता है–आज मुझे स्वप्न आया, जैसाकि अमुक भूमि में गणेश की प्रभावशाली प्रतिमा है। तब लोगों ने उस जमीन को खोदा, उस जमीन में गणेश के सुन्दरतम और अनुपम मूर्ति निकली। उसके दर्शन के लिए बहुत सारे लोग आये। उसके (उस प्रतिमा के) शिल्पकला की अति प्रशंसा की।

BSER

तब वह इन्द्रदत्त भी पुत्र के साथ गया। उस गणेश–मूर्ति को देखकर पुत्र को कहता है–हे पुत्र! इसे ही शिल्पकला कहते हैं। कैसी प्रतिमा बनायी गयी है, इसका निर्माता निश्चय ही धन्यतम और श्लाघनीय है। देखो, कहीं पर भी भूल (अथवा) और कमी है? यदि तुम ऐसी प्रतिमा का निर्माण करोगे तो तुम्हारी शिल्पकला की प्रशंसा करूँगा, अन्यथा नहीं।

पुत्र भी कहता है–हे पिता! यह गणेश–प्रतिमा मेरे द्वारा ही बनाई गई है। इसके नीचे गुप्त रूप से मेरा नाम भी लिखा हुआ है। पिता भी लिखित नाम को पढ़कर खिन्न ह्रदय से पुत्र को कहता है–हे पुत्र! आज से तुम ऐसी शिल्पकला से युक्त सुन्दरतम प्रतिमा को कभी भी नहीं कर सकोगे, क्योंकि मैं तुम्हारी शिल्पकलाओं में भूल दिखाता था, तब तुम भी सुन्दरतम कार्य करने में लीन होकर अत्यंत सूक्ष्म शिल्प को करते थे, जिससे तुम्हारी शिल्पकला भी बढ़ रही थी। अब 'मेरे समान अन्य नहीं है' इस प्रकार मन्द उत्साह से तुम ऐसी शिल्पकला नहीं कर सकोगे। इस प्रकार वह रहस्ययुक्त पिता के वचन को सुनकर पैरों में गिरकर इस अपराध के लिए क्षमा–याचना करता है, किंतु वह सोमदत्त तब से लेकर उस प्रकार की शिल्पकला को करने में असमर्थ हो गया।

**उपदेश**–विविध गुण–पद से युक्त शिल्पी–पुत्र के दृष्टान्त को जानकर और पूज्यों के वचन को सुनकर प्रतिकूल चिन्तन नहीं करना चाहिए।

**शब्दार्थ**

| | |
|---|---|
| सगासंमि–समीप में | अहेसि–था, रहता था |
| होत्था–था | सिलाहं–प्रशंसा, श्लाघा |
| गूढं–गुप्त | अमुगाए–अमुक |
| वाइऊण–पढ़कर, बांचकर | अज्जयणआ–आज से |
| खणिआ–(खनिता) खोदी गई | खुण्णं–कमी, गलती |
| नन्नो–(न अन्य) दूसरा नहीं | नियनामंकियचिन्हं–अपना नाम लिखकर |

सोहणयरकज्जकरणतच्छिल्ला–सुन्दरतर कार्य करने में तल्लीन।

पसंसाकरावणरूवनिआवराहं –प्रशंसा कराने के अपने अपराध को

**अभ्यास**

**(1) वस्तुनिष्ठ प्रश्न**

(क) ..........................................पुरी में श्रेष्ठ शिल्पी रहता था।

(ख) शिल्पी का नाम..............................................था।

(ग) शिल्पी के पुत्र का नाम..........................................था।

(घ) शिल्पीपुत्र ने....................................की प्रतिमा बनाई।

**(2) निबन्धात्मक प्रश्न**

(1) शिल्पी–पुत्र की कथा से मिलने वाली शिक्षाओं को लिखें।

(2) प्रस्तुत पाठ के आधार पर बताएं कि पिता की विचारधारा अपने पुत्र के प्रति उपयुक्त थी अथवा अनुपयुक्त।



BSER

## 3. विउसीए पुत्तबहुए कहाणगं

*इस पाठ का मूल उद्‌देश्य धर्म के प्रति रुचि उत्पन्न करना है। जिस व्यक्ति का जीवन धर्म एवं आचार से हीन होता है, उसका समाज में सम्मान नहीं होता। जब्कि आचारवान, श्रद्धावान व धर्मवान सदैव जगत् में सुखी रहते हैं। **'विदुषी पुत्रवधू का कथानक'** नामक पाठ से यह शिक्षा मिलती है कि जीवन में धर्म का आश्रय अत्यन्त आवश्यक है। जितनी जल्दी हो सके हमें अपने जीवन में धर्म को अपना लेना चाहिए, क्योंकि जो जितनी जल्दी धर्म को अपनाता है, वह उतना ही उम्र कह दृष्टि से परिपक्व हो जाता है।*

**पाठ—परिचय**

प्राकृत कथा साहित्य अतिसमृद्ध एवं विशाल है। इसमें जीवन के विविध पक्षों को उद्‌घाटित किया गया है। श्रमण भगवान् महावीर ने अपने उपदेशों में प्राकृत भाषा का प्रयोग किया तथा उपदेशों को प्रभावी बनाने की दृष्टि से कथाओं का आश्रय उन्होंने लिया। इसी श्रृंखला में आचार्यों ने भी उपदेशों में कथाओं का आश्रय लिया है। **'विदुषी पुत्रवधू का कथानक'** भी जनसभाओं के रूप में प्रचलित होने के कारण प्राकृत भाषा के विद्वान् आचार्य श्री विजयकस्तूर सूरीश्वर जी म. सा. ने इस कथा को सृजित किया है तथा जिसे मुनि श्री जयचन्द विजय म. सा. ने **'पाइयविण्णाण कहा'** नामक कथासंग्रह में सम्पादित किया है मास्तर जसवन्तलाल गीरधरलाल, अहमदाबाद से ई0 1967 में प्रकाशित यह कथा हमें यह शिक्षा देती है कि हमें अल्पकाल से ही धर्माचरण कर लेना चाहिए, जिससे हम अपनी गति सुधार सकें।

**(मूल पाठ)**

**कालो गओ जो धम्मम्मि सो णेओ सहलो च्चिअ।**
**निप्फलो सयलो सेसो बहू एत्थ निदंसणं।।**

कम्मि नयरे लच्छीदासो सेट्ठी वरीवट्टइ। सो बहुधणसंपत्तीए गव्विट्ठोआसि। भोगविलासेसु एव लग्गो कयावि धम्मं ण कुणेइ। तस्स पुत्तो वि एयारिसो अत्थि। जोव्वणे पिउणा धम्मिअस्स धम्मदत्तस्स जहत्थनामाए सीलवईए कन्नाए सह पाणिग्गहणं पुत्तस्स कारावियं। सा कन्ना जया अट्ठवासा जाया, तया तीए पिउपेरणाए साहुणीसगासाओ सव्वण्णध ाम्मसवणेण सम्मत्तं अणुव्वयाइं, य गहीयाइं, सव्वण्णधम्मे अईव निउणा संजाआ।

जया सा ससुरगेहे आगया तया ससुराइं धम्माओ विमुहं दट्ठूण तीए बहुदुहं संजायं। कहं मम नियवयस्स निव्वाहो होज्जा? कहं वा देवगुरुविमुहाणं ससुराईणं धम्मोवएसो भवेज्जा, एवं सा वियारेइ।

एगया 'संसारो असारो, लच्छी वि असारा, देहोवि विणस्सरो, एगो धम्मो च्चिय परलोगपवन्नाणं जीवाणमाहारु' त्ति उपएसदाणेण नियभत्ता सव्वण्णधम्मेण वासिओ कओ। एवं सासूमवि कालंतरे बोहेइ। ससुरं पडिबोहिउं सा समयं मग्गेइ।

एगया तीए घरे समणगुणगणालंकिओ महव्वई नाणी जोव्वणत्थो एगो साहू भिक्खत्थं समागओ। जोव्वणे वि गहीयवयं संतं दंतं साहूं घरंमि आगयं दटठूणं आहारे विज्जमाणं वि तीए वियारियं—'जोव्वणे महव्वयं महादुल्लहं, कहं एएण एयंमि जोव्वणत्तणे गहीयं?'' ति परिक्खत्थं समस्साए पुट्ठं—'अहुणा समओ न संजाओ, किं पुव्वं निग्गया?' तीए हिययगयभावं नाऊण साहूणा उत्तं—''समयनाणं—कया मच्चू होस्सइ त्ति नत्थि नाणं, तेण समयं विणा निग्गओ।'' सा

उत्तरं नाऊण तुट्ठा। मुणिणा वि सा पुट्ठा–'कइ वरिसा तुम्ह संजाया?' मुणिस्स पुच्छाभावं नाऊण वीसवासेसु जाएसु वि तीए 'बारसवास' त्ति उत्तं। पुणरवि 'ते सामिस्स कइ वासा जातं' त्ति? पुट्ठं। तीए पियस्स पणवीसवासेसु जाएसु वि पंचवासा उत्ता, एवं सासूए 'छम्मासा' कहिया। ससुरस्स पुच्छाए सो 'अहुणा न उप्पण्णो अत्थि' ति भणिआ।

एवं बहू–साहूणं वट्टा अंतट्ठिएण ससुरेण सुआ। लद्धभिक्खे साहुंमि गए सो अईव कोहाउलो संजाओ, जओ पुत्तबहु मं उद्दिस्सं 'न जाउ' त्ति कहेइ। रुट्ठो सो पुत्तस्स कहणत्थं हट्टं गच्छइ। गच्छन्तं ससुरं सा वएइ–'भोत्तूणं हे ससुर! तुं गच्छसु।' ससुरो कहेइ–'जइ हं न जाओ म्हि, तया कहं भोयणं चव्वेमि–भक्खेमि' इअ कहिऊण हट्टे गओ। पुत्तस्स सव्वं वुत्तंतं कहेइ–'तव पत्ती दुरायारा असब्भवयणा अत्थि, अओ तं गिहाओ निक्कासय।'

सो पिउणा सह गेहे आगओ। बहुं पुच्छइ–'किं माउपिउणो अवमाणं कयं? साहुणा सह वट्टा किं असच्चमुत्तरं दिण्णं?' तीए उत्तं–'तुम्हे मुणिं पुच्छह, सो सव्वं कहिहिइ।' ससुरो उवस्सए गंतूण सावमाणं मुणिं पुच्छइ–'हे मुणे, अज्ज मम गेहे भिक्खत्थं तुम्हे किं आगया?' मुणी कहेइ–'तुम्हाण घरं ण जाणामि, तुमं कुत्थ वससि?' सेट्ठी वियारेइ 'मुणी असच्चं कहेइ।' पुणरवि पुट्ठं–'कत्थ वि गेहे बालाए सह वट्टा कया किं?' मुणी कहेइ–'सा बाला अईव कुसला, तीए मम वि परिक्खा कया।' तीए हु वुत्तो–'समयं विणा कहं निग्गओ सि?' मए उत्तरं दिण्णं–''समयस्स–'मरणसमयस्स' नाणं नत्थि, तेण पुव्ववयम्मि निग्गओ म्हि।'' मए वि परिक्खत्थं सव्वेसिं ससुराईणं वासाइं पुट्ठाइं। तीए सम्मं कहियाइं। सेट्ठी पुच्छइ–'ससुरो न जाओ इअ तीए किं कहियं?' मुणिणा उत्तं–'सा चिय पुच्छिज्जउ, जओ विउसीए तीए जहत्थो भावो नज्जइ।'

ससुरो गेहं गच्चा पुत्तनहुं पुच्छइ–'तीए मुणिस्स पुरओ किमेवं वुत्तं–मे ससुरो जाओ वि न।' तीए उत्तं–''हे ससुर, धम्महीणमणुसस्स माणवभवो पत्तो वि अपत्तो एव, जओ सद्धम्मकिच्चेहिं सहलो भवो न कओ सो मणुसभवो निप्फलो चिय। तओ तुम्ह जीवणं पि धम्महीणं सव्वं गयं। तेण मए कहिअं–मम ससुरस्स उप्पत्ती एव न।'' एवं सच्चत्थाणे तुट्ठो धम्माभिमुहो जाओ। पुणरवि पुट्ठं–'तुमए सासूए छम्मासा कहं कहिआ?' तीए उत्तं–'सासुं पुच्छह।' सेट्ठिणा सा पुट्ठा। ताए वि कहिअं–''पुत्तवहूण वयणं सच्चं, जओ मम सव्वण्णुधम्मपत्तीए छम्मासा एव जाया, जओ इओ छम्मासाओ पुव्वं कत्थ वि मरणपसंगे अहं गया। तत्थ थीणं विविहगुणदोसवट्टा जाया।''

एगाए वुड्ढाए उत्तं–'नारीण मज्झे इमीए पुत्तवहू सेट्ठा। जोव्वणवए वि सासूभत्तिपरा धम्मकज्जम्मि स एव अपमत्ता, गिहकज्जेसु वि कुसला नन्ना एरिसा। इमीए सासू निब्भगा, एरिसीए भत्तिवच्छलाए पुत्तबहूए वि धम्मकज्जे पेरिज्जमाणावि धम्मं न कुणेइ, इमं सोऊण बहुगुणरंजिआ तीए मुहाओ धम्मो पत्तो। धम्मपत्तीए छम्मासाा जाया, तओ पुत्तवहूए छम्मासा कहिआ, तं जुत्तं।''

पुत्तो वि पुट्ठो, तेण वि उत्तं–''रत्तीए समयधम्मोवएसपराए भज्जाए संसारासारदंसणेण भोगविलासाणं च परिणामदुहदाइत्त–णेण वासाईपूरतुल्लजुव्वणत्तणेण य देहस्स खणभंगुरत्तणेण जयम्मि धम्मो एव सारु त्ति उवदिट्ठो हं सव्वण्णुधम्माराहगो जाओ, अज्ज पंचवासा जाया। तओ वहूए मं उद्दिस्स पंचवासा कहिआ, तं सच्चं।'' एवं कुडुंबस्स धम्मपत्तीए वट्टाए विउसीए य पुत्तवहूए जहत्थवयणं सोऊण लच्छीदासो वि पडिबुद्धो वुड्ढत्तणे वि धम्मं आराहिअ सग्गइं पत्तो सपरिवारो।

उवएसो–

**सीलवईअ दिट्ठंतं ससुराइविवोहगं।**
**सोच्चा धम्मेण अप्पाणं वासिअं कुण सव्वया।।**

## (हिन्दी अर्थ)

जो काल धर्म में बीता वही सफल है, शेष सभी समय निष्फल है। बहु का यह निदर्शन जानना चाहिए।

किसी नगर में लक्ष्मीदास नाम का सेठ रहता था। वह बहुत अधिक धन–सम्पत्ति के कारण अहंकारी हो गया था। निरन्तर भोग–विलास में आसक्त रहने के कारण वह कभी धर्मकार्य नहीं करता था। उसका पुत्र भी ऐसा ही था। जब वह युवावस्था को प्राप्त हुआ, तब उसके पिता ने धर्मदास नाम के एक धर्मात्मा की शीलवती नाम की पुत्री के साथ उसका विवाह करा दिया। वह कन्या जब आठ वर्ष की थी, तभी उसने अपने पिता की प्रेरणा से एक साध्वी के पास सर्वज्ञ–धर्म का श्रवण कर विधिपूर्वक अणुव्रतों को धारण कर लिया था और इस प्रकार वह सर्वज्ञ–धर्म में बहुत ही निपुण हो गई थी।

जब वह ससुराल आई तब ससुर आदि को धर्म से विमुख देखकर अतीव दुःखी हुई। यहां मेरे व्रत का निर्वाह कैसे होगा? देव एवं गुरु से विमुख ससुर आदि के लिए धर्मोपदेश कैसे दिया जाए, ऐसा वह विचार करने लगी। एक बार संसार असार है, लक्ष्मी भी सारविहीन है, यह देह भी विनाशशील है, केवल एक धर्म ही है, जो मिथ्यात्व से परलोक सुधारने की इच्छा रखने वाले जीवों के लिए श्रेष्ठ आधार है, इस प्रकार का उपदेश देकर उसने अपने पति को सर्वज्ञ–धर्म से वासित कर लिया। इसी प्रकार किसी समय सास को भी प्रतिबोधित कर लिया तथा ससुर को प्रतिबोधित करने के लिए अवसर की खोज में रहने लगी।

एक बार उसके घर में श्रमण के गुणों से अलंकृत, महाव्रती और ज्ञानी यौवन में स्थित एक साधु भिक्षा के लिए आया। युवावस्था में भी व्रतों को धारण कर लेने वाले, शान्त एवं दान्त साधु को घर में आया देखकर आहार के रहने पर भी उसने विचार किया–यौवन में महाव्रत को स्वीकार करना महान् दुर्लभ है, कैसे इसने इस यौवनावस्था में ग्रहण कर लिया? परीक्षा करने के लिए समस्या के रूप में साधु से पूछा–अभी समय नहीं हुआ, फिर पहले कैसे निकल गये? उसके हृदयगत भाव को जानकर साधु ने कहा–''समय ही ज्ञान है, कब मृत्यु हो जाये ऐसा ज्ञान नहीं होता, अतः समय के बिना ही निकल गया।'' वह वधू उत्तर सुनकर संतुष्ट हो गई। मुनि ने भी उसे पूछा–तुम कितने वर्षों की हो गई? मुनि के पूछने के भाव को जानकर बीस वर्ष के होने पर भी उसने कहा–बारह वर्ष की हूं। पुनः साधु ने उससे पूछा–तुम्हारा पति कितने वर्ष का है? पति के पच्चीस वर्ष के होने पर भी पांच वर्ष का है, कहा, इसी प्रकार सास को छः महीने का बताया। ससुर के बारे में पूछने पर कहा–वह अभी उत्पन्न ही नहीं हुए हैं।

इस प्रकार बहू और साधु के वार्तालाप को ससुर ने भीतर से सुन लिया। भिक्षा प्राप्त कर जब साधु चला गया तब वह (ससुर) अत्यधिक क्रोध से आकुल हो गया कि पुत्रवधू मुझे उत्पन्न नहीं हुआ ऐसा कहती है। रुष्ट होकर वह पुत्र को कहने के लिए दुकान जाने लगा। जाते हुए ससुर को वह कहती है–हे ससुर! भोजन करके जाना। ससुर कहता है–यदि मैं जन्मा ही नहीं हूं तो कैसे भोजन चबाऊंगा तथा कैसे खाऊंगा, ऐसा कहकर दुकान में चला गया। जाकर पुत्र को सारी घटना कहता है–तुम्हारी पत्नी दुराचारिणी तथा असत्य वचन बोलने वाली है, अतः उसको घर से निकाल दो। वह पिता के साथ घर आ गया। बहू को पूछता है–क्यों माता–पिता का अपमान किया? साधु के साथ वार्तालाप में क्या असत्य उत्तर दिया? उसने कहा–तुम मुनि को ही पूछ लो, वह सब कुछ कह देगा। ससुर उपाश्रय में जाकर अपमान करता हुआ मुनि को पूछता है–हे मुनि! आज मेरे घर में भिक्षा लेने के लिए क्यों आए थे? मुनि कहता है–तुम्हारा घर नहीं जानता, तुम कहां रहते हो? सेठ सोचता है–मुनि असत्य कह रहा है। पुनः पूछता है–किसी घर में युवती के साथ वार्ता की थी? मुनि कहता है–वह युवती अति कुशल है, उसने मेरी भी परीक्षा की। उसने मुझसे पूछा–समय बिना कैसे निकले? मैंने उत्तर दिया–समय का अर्थात् मरणकाल का ज्ञान नहीं है, अतः पूर्वदय (यौवनावस्था) में ही निकल गया हूं। मैंने भी परीक्षा लेने

के लिए ससुरादि के उम्र के बारे में पूछा। उसने सम्यक् उत्तर दिये। सेठ पूछता है–ससुर नहीं जन्मा है, ऐसा उत्तर उसने कैसे दियाः मुनि कहता है–उससे ही पूछो, क्योंकि वह विदुषी है, यथार्थ के भाव को जानती है।

ससुर घर आकर पुत्रवधू से पूछता है–उस मुनि के सामने तुमने कहा कि मेरा ससुर जन्मा ही नहीं है। उसने उत्तर दिया–हे ससुर! धर्म से रहित मनुष्य, मनुष्य भव प्राप्त करके भी अप्राप्त के समान है, क्योंकि सधर्म कार्यों से भव को सफल नहीं किया, मनुष्य जन्म निष्फल ही हो गया। अतः आपका जीवन भी धर्म से रहित होकर पूर्ण चला गया इसलिए मैंने कहा–मेरे ससुर का जन्म ही नहीं हुआ है। इस प्रकार सत्य अर्थ को सुनकर वह धर्माभिमुख हो गया।

पुनः पूछता है–तुमने सासु को छः महीने की ही कैसे कहा? उसने कहा–सासु से ही पूछ लीजिये। सेठ ने उससे पूछा तो सासु ने कहा कि पुत्रवधू के वचन सत्य हैं, क्योंकि मुझे सर्वज्ञधर्म स्वीकार किये हुए छः महीने ही हुए हैं अतः छः महीने के पूर्व के समय मेरे नष्ट हो गये।

उस नगर में जिस समय उस पुत्रवधू के विविध गुणों की चर्चा होने लगी तभी एक वृद्धा ने कहा था–नारियों में वही पुत्रवधू श्रेष्ठ है। यौवनावस्था में भी सास की भक्ति करती है और धर्मकार्यों में भी अप्रमत्त है। गृहकार्य में कुशल है। इसकी सासु भाग्यहीन है, ऐसी भक्ति–वत्सल पुत्रवधू के द्वारा धर्मकार्य में प्रेरित किये जाने पर भी धर्म नहीं करती, यह सुनकर बहू के गुणों से प्रसन्न हो उसके समक्ष, धर्म को स्वीकार कर लिया। धर्म स्वीकार को छः महीने ही हुए हैं, अतः पुत्रवधू ने छः महीने का जो कहा वह युक्त है।

पुत्र को भी पूछा, उसने कहा–रात्रि में सदैव धर्मोपदेश देने के क्रम में आपकी पुत्रवधू ने मुझे बताया कि यह संसार असार है। भोग–विलास का परिणाम दुःखदायी है, बरसाती नदी के समान यौवनावस्था से युक्त देह की क्षण–भंगुरता से उत्पन्न होने वाले दुःखों से ग्रस्त इस संसार में एकमात्र धर्म ही सहायक है। ऐसा उपदेश दिये जाने पर मैं सर्वज्ञ–धर्म का अनुरागी हो गया। इसे स्वीकार किये मुझे पांच वर्ष हो गये अतः मेरी उम्र पांच वर्ष बताई वह सत्य है। इस प्रकार कुटुम्ब की धर्मप्राप्ति संबंधी वार्ता तथा विदुषी पुत्रवधू के यथार्थ वचनों को सुनकर लक्ष्मीदास प्रतिबुद्ध हो गया और वृद्धावस्था में भी धर्म–आराधनापूर्वक सम्पूर्ण परिवार सहित सद्गति को प्राप्त किया।

**उपदेश–**ससुरादि को प्रतिबोध देने वाली शीलवती के दृष्टान्त को सुनकर सर्वदा अपने को धर्म से भावित करो।

**भाब्दार्थ**

| | |
|---|---|
| वरीवट्टइ–रहता था | गविट्ठो–गर्विष्ठ |
| जहत्थनामाए–यथार्थ नामवाली | जया–जब |
| संतं दंतं–शान्त–दान्त | एएण–इसने |
| जीवाणमाहरु–जीवों का आधार | बोहेइ–समझाया |
| होस्सइ–होगा | वट्टा–वार्ता |
| पुच्छिज्जउ–पूछें | गच्चा–(गत्वा) जाकर |
| थीणं–स्त्रियों के | वियारेइ–विचार करती है। |
| नज्जइ–जाना जाता है। | जयम्मि–संसार में |
| जहत्थवयणं–यथार्थ वचन | परिणामदुहदाइत्तणेण–परिणाम में दुःखदायी होने से। |

समणगुणगणालंकिओ–श्रमण–गुणसमूह से अलंकृत

वासाणईपूरतुल्लजुव्वणत्तणेण–बरसाती नदी की बाढ़ जैसे युवावस्था से

BSER

## अभ्यास

### (1) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) विदुषी पुत्रवधू के घर .............................. आये।

(2) पुत्रवधू के पति की उम्र ................................ थी।

(3) सेठ अपने ...................................... के पास जाता है।

(4) यौवन में ............................... महादुर्लभ है।

(5) .............................का ज्ञान नहीं होता।

### (2) निबन्धात्मक प्रश्न

(1) 'विदुषी पुत्रवधू–कथा' की नायिका का चरित्र नारी समाज के उत्थान के लिए एक अनुकरणीय आदर्श है। इस कथन की समीक्षा कीजिए।

(2) प्रस्तुत पाठ का सारांश अपनी भाषा में लिखें।

BSER

## 3. माया मिताणि णासइ

'माया' किं अत्थि ? इणं पण्हं समाहाणं अत्थि, माया छलकपड–रूवो अत्थि एसा बहिरंग–रूवो बहुसुंदरो अइलुहावतणं च। विणीयो आकस्सगो य माणस–माणसं। जहेट्ठम्मिसा माया अइदुक्खदाई, किलेसप्पदायगा, हिदय–घायगा मण सोग–संकुलतणं कुव्वंती य।

चउ–कसएसु इमाए तइय–ठाणं अत्थि। इमाए भासा–भासंता जीहा णत्थि, सा असिधारा अत्थि, महु–संसिलिट्ठा अत्थि। सा जीवणं परिपुट्ठं ण कुणइ, अवि तु मितणि णासइ। एसा माया होइ अणत्थाय। जहिसं अंतरम्मि मायाए अंसो हवइ तो णाणारूवं पतेह, माया जुतो सरलप्पा णत्थि। भगवईए उत्तो– मया विउव्वइ, तो अमायी विउव्वइ।

माया मिच्छादिट्ठी – जो जणो अस्सिं लोगंसि मायावी अत्थि सो ''माई मिच्छादिट्ठ'' इणं वयणमवि भगवईए अत्थि। अओ जो मिच्छादिट्ठी अत्थि ''सो माई पमाई पुण एइ गब्भं'' अहवा मायाए पुणो पुणे जम्मं च होइ। ठाणम्मि भासितो –

वंसीमूल–केतण–समाणं मायं अणुविट्ठे।
जीवे कालं करेइ णेरइएसु उववज्जंति।।
–स्था. 4/2।।

वंसस्स जडसमा माया अत्थि, जो अप्पं णइरियम्मि णयइ। मामज्जवभावेण – माया अज्जव–भावेण णस्सइ। उत्तरज्झयणे वि उत्तं – माया विजएणं अज्जवं जणयइ। मायं जो जयइ सो अज्जवभावं पत्तेइ। जइ एरिस–भावो णत्थि – तं तु जइ वि य नगिणे किसे चटे, जइ वि य भुंजित–मासमंतसो।

जे इह मायाहि मिज्जई आगंता गब्भाग णंतसो।। (सूत्र 1/2/1/91)

जेहेट्ठे जो मायाए जुत्तो अत्थि सो अणंतसंसार–सायरे परिभमति। जो अज्जवभावेण जुत्तो अत्थि सो रिजुत्तणं पत्तेइ। सो एव 'तुमेव मित्तं तुमेव सत्तू' इणं वयणं णेऊण अस्सिं संसारम्मि सव्वेसिं जणाणं अप्पसम मण्णए।

BSER

## 4. आहारमिच्छे मियमेसणिज्जं

तजातिज्ज–विजातिज्ज–ठोस–वत्थुणो एमसमूहं 'पिउं अत्थि। तं आहार वि भसए आहारस्स चउविहो– ''असणं पाणगं वा वि खाइमं साइमं तहा।'' तं आहार एसणा आहारेसणा/पिंडेसणा अत्थि। तं आहारं मि– च एसण्जिं। दसवेयालयम्मि भासिओ–

**जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियइ रस।**
**ण य पुप्फं किलामेइ, सो य पीणेइ अप्पयं।। –(दसवै, 1/2)**

आहारस गवेसणा विहिपुव्वगं अवितव्वं। भमरसमवित्तिं पालेयव्वं। जे समणा मुत्ता अत्थि, साहगा अत्थि ते दायाए पदत्त–आहारं गिण्हेंति। जहोत्तं–

**एमे ए समणा मुत्ता, जे लोए संति साहुणो।**
**विहंगमा व पुप्फेसु, दाण–भात्तेसणे रया।। –(दसवै. 1/2)**

भिक्खाडणं–विहि–णिसेह–पुव्वगं भिक्खत्थं चरेज्ज। समभावं धारिऊण समणा या समणी आसत्ति–लालसा–इच्छा–गिद्धि परिचत्तिऊण भिक्खाडणं समाचरेज्ज। तं जहा–

**संपत्ते भिक्खकालम्मि, असंभंतो अमुच्छिओ।**
**इमेण कमजोगेण, भत्तपाणं गवेसए।। –(दसवै. 5/83)**

आयारम्मि पिंडेसणाए अज्झयणम्मि (1) गवेसणा (2) गहणेसणा गासेसणा इमा तिविह–एसणाए विवेयणं अत्थि। तम्मि सचित–विहीण–आहारं एसणिज्ज भासिओ।

भिक्खापरीए दोसा – जिणसुत्तेसुं आगमेसुं च आहाकम्मे, उद्देसिये, पूइकम्मे, मीसजाए ठवणे, पाहुडियाए, पाओअरे, कीए, पामिच्चे इच्चाइ–बियालीस–दोसाणं विवेयणं अत्थि। तेसिं दोसाणं णिवारणं किच्चा मियमेसणिज्जं इच्छे। एसणासमिईए पिण्डवायं गवेसए। तं जहा –

**इसणा समिओ लज्जू, गामे अणियओ चरे।**
**अप्पमत्तो पमत्तेहिं, पिंडवाये गवेसए।।**

भिक्खाचरियाए विवेगो – विवके–सील–समणा, पण्णवंता साहू या साहगा भिक्खाचरियाए खभं धारेज्ज, मज्जयं णिक्खवेज्ज, अज्जयं चरेज्ज, मणसा वयसा कायसा सदेव संजम–तव–चाग–पुव्वगं समणत्तणं पालेज्ज। समणत्तणम्मि णिम्मवित्ती ण हवेज्ज –

**अदीणे वित्तिमेसेज्जा, न विसीएज्ज पंडिए।**
**अमुच्छिओ मोयणम्मि मायन्ने एसणारए।।–(दसवै. 5/239)**

भारस्स जाआ मुणी भुंजएज्जा– आहारस्स एसणा वि संजमभारं हेउं करेज्जा। जे भिक्खू या भिाक्खुणी संतुट्ठी य संजमी हुंति ते संतोसओ वित्तिं करेंति। ते ''पक्खी पत्तं समादाय, णिर वेक्खो परिव्वए''। संजमी साहगा णाणी मुणी णिरवेक्खा हुंति, ते पक्खि व्व चरेंति। णीरसं आाहारं संजए भुंजिज्ज।

अलाभुत्ति न सोएज्जा – भिक्खू वा भिक्खणी सया हि मज्जाणुसारं निद्दोस –आहारं अलाभे त्ति ण सोएज्जा, ण सोगं करेंति। ते तवो त्ति अहियाए' मुणिऊण णिच्चं अलोलुवी अगिद्धी वि हुंति। तं जहा –

**अलोले न रसे गिद्धे, जिब्भादंते समुच्छिए।**
**न रसट्ठाए भुंजिज्जा, जवणट्ठाए महामुणी।। (उत्त. 35/15)**

अओ साधगमुणी अवगणाणं चइत्ता आहार इच्छे। तं जहा।

**सिक्खिऊण भिक्खेसणसोहिं, संजयाण बुद्धाण सगासे।**
**तत्थ भिक्खु सुप्पणिहि–इंदिए तिव्व–लज्ज–गुणवं विहरेज्जासि।।**

## 5. खामेमि सव्वजीवा

जत्थेव सया संती, सहिस्णुतं, णेहो, कारूण्णं मित्तिभावं च तत्थेव खमा हवइ। खमा परोप्परं समभावं उप्पज्जेति। संती जाइ। इमत्तो अण्णेसिं मणस्स जएज्जा, अण्णेसिं कुवियाराणं विरोहजण्ण–जीवणं स समेज्जइ।। कडुत्तं, वइरं, विरोहं पडिसोहं च सम्मएज्जा।

महाराणा णाणीजण खमा सीला हुंति। ते अण्णेसिं दोसाणं दिट्ठी कया वि ण देंति। ते सव्वे जीवाणं सव्वे सत्ताणं, सव्वे पाणाणं भूताणं च णियसरिचछमेव मण्णंते। ते कोहाओ विप्पमुत्ता हुंति। ते पियं अप्पियं संतीए सहेंति। जहोत्तं– पियमप्पिंयं सव्वतितिकखएज्जा। (उत्त. 21/15) जे खमा सीला जणा हुंति ते धम्मे थिर–चितं होऊण समभाव–पुव्वगं चितेंति।

**खामेमि सव्वजीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे।**
**मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झं न केणइ।।**

एरिसा एव तेसिं पउत्ती, अवि तु ते चिंतेंति–जे जणा अण्णेसिं अवराहं, दोसाणं कोहभावाणं च ण खमेंति, ण तेसिं दोसार्ण मण्णिऊण ण खएंति ते मित्तत्तणं सेउं तुट्टेंति। जम्हा तेसिं विगास–पहो वि अविरूज्झो होइ। जणाणं च आवस्सगं अत्थि अण्णेसिं दोसाणं, अण्णेसि अवराहाणं विमुंचिऊण गुणावं हि सरेज्ज। सज्जणा भाणुसमा हुंति। ते तेंज देंति, अंधयारं हणेंति। दोसाणं आच्छादएंति, गुणाणं पगडएंति। कहेज्जइ–

जसं संचिणु खंतिए– खमाभावेण जसं संचिणु। जे मुणी या णाणी होंति ते पुढविसमा अत्थि। जहा पुढवी सव्वं सहजरूवेण सहेइ तहा मुणी साहगा सज्जगा वि 'पुढविसमो' हवेज्जा।

खंतिएणं जीवे परिसहे जिणइ– जे जण खंतिं धारंति, तेणं खंतिएणं परिसहाणं वि जिणेंति। पासविंग–सत्तीणं उवसमेंति। मणं समभावे कुणंति। सव्वेसिं जीवरासीणं पडि धम्मणिहिअ–चित्तेण सव्वे खमावइत्ता सव्वेसिं खमामि एरिस–भावणाजुत्ता ते 'वेरं मज्झंण केणइ' अस्स भावस्स धारेंति।

## 6. समियाए धम्मे

आयारंग–सुत्तसस देसणाए इणं वयणं अत्थि ''समियाए धम्मे आरिएहि पवेइए'' आरिय–पुरिसेहिं, समण–भगवंतेहि आइरिएहिं समत्तं, समभावं, समित्तं, समिअं, समं च धम्मो भासिआ/पण्णत्ता। जत्थेव समिया होइ तत्थेव सव्वेसिं किरियाणं हियस्स भावणा होइ।

धम्म–देसणम्मि धम्मस्स अणेगणि लक्खणाणि कियाणि। दयाविसुद्धो धम्मो, रयणत्तयं च धम्मो, दंसणमूलो धम्मो, अहिंसा धम्मो, संजमों धम्मो, तवो धम्मो य। चारित्तं खलु धम्मो वि पण्णतं। जत्थेव दंसण–णाण–पहाणाओ चारित्तं हवइ तत्थेव समो हवइ। समो समभावो समत्तो समत्तो य मोहक्खोहविहीण–अप्पम्मि हवइ। अण्णम्मि–खमा–अज्जव–मज्जव–सच्च–सोच–तव–चाग–अकिंचण–बंहचेरं दसविहो धम्मो पण्णत्तो।

मूलत्ता धम्मो दुविहो– सुयधम्मे चेव चारित्त धम्मे चेव। (स्थानां 2/1) तिविहो–सम्मदंसण–णाण– चरित्ताणि। चउविहो–खंती मुत्ती मुत्ती अज्जवे मद्दवे। (स्था. 4/4) वि अत्थि। किण्णु जो धम्मो समभावं–पदेइ सो धम्मो समियाए धम्मो। दसवेयालयम्मि धम्मस्स एस सरूवो – धम्मो मंगलमुक्कि ट्ठं अहिंसा संजमो तवो।

**धम्मो दीवो–जरा मरणवेगेणं, वुज्झमाणाण पाणीणं।**
**धम्मो दीवो पइट्ठा य गई सरणमुत्तमं।।(उत्त. 23/68)**

धम्मस्स समायरणेणं उत्तमा गई, उत्तमं सरणं उत्तमो तवो संजमो य अहिंसा वि उत्तमा। जे जण धम्मं कुणेंति तस्स रयणीओ सफलता जंति। जे जण अधम्मं कुणेंति तस्स रयणीओ विफला जंति। अओ जं सेयं समाचरेंति। तं सोच्चा अहिंसा संजमं तवं खंतिं च आराहएंति। तं जहा–

**जं सोच्चा पडिवज्जंति, तवं खंतिमहिंसयं। (उत्त 3/81)**

दिव्वं च गइं गच्छंति चारित्ता धम्मारियं–ये आरिया, साहगा य सम्मं धम्मं आचरेंति, ते दिव्वं गई च पत्तेंति।

धम्मस्स विणओ मूलो– पण्हवागरणम्मि पण्णतं– पिणओ वि तवो तवो पि धम्मो। जत्थ. विणओ मूलम्मि होइ तत्थ तवो हवइ। तवेण उज्जुभावो हवइ। जहोतं–

**''सोही उज्जुअभूयस्य, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई।'' (उत्त. 3/12)**

सरलप्पणम्मि सोही हवइ, सुद्धी हवइ। सुद्धप्पणम्मि एव धम्मो थिरो जाइ। तम्हा धम्मं चर! सुदुच्चरं। जो धम्मो आचरणम्मि दुच्चरो अत्थि सो समियाए आचरणेणं च सुदुच्चरो वि जाइ।

मेहावी जाणिज्ज धम्मं– जे णाणी, मइमंता, पण्णावंता या साहगा अत्थि ते 'समियाए धम्मो' मुणिऊण माणुसत्तणं मूलं धम्मं आराहए। पणित्तचित्तम्मि ठिरम्मि सो धम्मो णिव्वाणमभिगच्छइ। अओ जो धम्मो जीवाणं समियं भावं उपज्जेइ तं धम्मं आचरेज्ज।

कोहो णियसस परस्स घातस्स अणुवगारस्स वियारेण उप्पज्जइ। जो कूरत्तणं परिणामं जम्मेइ। कोहो अप्पीई परिणाओ अत्थि, जो पीइं पणस्सए। सच्चं सीलं विणयं चवि हणेज्ज। पण्हवागरणम्मि उत्तं–कुद्धो चंडिक्किओ मणूओ

आलियं भणेज्ज, पिसुणं भणेज्ज, फरूसं भणेज्ज, अलियं–पिसुणं–फरूसं–भणेज्ज, कलहं करेज्जा, वेरं करिज्जा, विकहं करेज्जा इच्चाई। सो सच्चं सीलं विणयं हणेज्जा।

कोहो पीइं पणासए– कोहो अग्गी समा अत्थि, तत्तो वि भीसणो। जहा अग्गी जणं जालेज्जइ। जो तस्स जलणम्मि आगच्छइ सो अवसं च आच्छेज्जइ। कोहस्स दावाणलम्मि कोवंतो/रोसंतो जलेइ/डहेइ। सो जइ खमाओ भावितो अत्थि। खंतीइ भाविओ भवइ अंतरप्पा संजय–कर–चरण –णयण–वयणो सूरो सच्चज्जवं संपण्णो।

अवसमेण हणे कोहं– कोहेण माणसिग–दुक्खं जाएज्ज। तं कोहं उवसमेण हणेज्ज। कोहणिग्गहेणं च खमासीलत्तणं च उप्पज्जइ। खमाए मित्ती। जीवाणं पडि सम्मभावणा जाएज्जा। जणेसुं एसा भावना उवएज्जए–

**सव्वे पाणा पिआउआ सुहसाया दुक्खपडिकूला अप्पियवहा।**
**पियजीविणो जीविउकामा, सव्वेसिंह जीवियं पियं।।** **(आ. 2/2/3)**

कोहस्स कारणाणि– चउहिं ठोणहिं कोहुप्पति सिया–तं जहा– (1) खेतं पडुच्च (2) वत्थु पडुच्च (3) सरीरं पडुच्च (4) उवहिं पडुच्च।

चउपइट्ठिए कोटे पण्णत्ते – (1) आय – पइट्ठिए (2) परपइट्ठिए (3) तदुभपरट्ठिए (4) अप्पइट्ठिए। जे कोहदंसी से माणदंसी–अप्प–साहगो रोसचिहीणो होइ सो णिरंतरं जणं पडि णेहं करेइ। किण्णू जे कोह दंसी से माणदंसी अहंकारी वि होइ।

कोहो अप्प–विकारो–कोहो अप्पस्स अंतरिक–परिणामो वि अत्थि जेणं च जाएज्ज सत्तिहीणत्तणं दुव्वलत्तणं च। अओ हम्ममाणो व कुप्पेज्जा वुच्चमाणो ण संजले। णिच्चं तु खंतिं सेविज्ज पंडिए। साहगो मुणी सावग–साविगा कोहं णासिउं सव्वेसिं जीवाणं मित्ति–भावं कुणेज्ज।

BSER

# 7. पण्णा समिक्खए धम्मं

जे पण्णावंता बुद्धिमंता य होंति ते धम्मस्स समिक्कखए। जे पण्णावंता होंति ते 'सव्वेसिं जीवियं पियं' भावणाए कुणेंति। पण्णावंता ते एव होंति जे सयस्स/अप्पस्स दोसाणं, अप्पाणं च हीणत्तणं च पस्सइ। तेसुं च संसोहणं करेउं जण्णसीला हवेंति।

एवं खु नाणिणो सारं– णाणिणो सारो णाणिणो गुणो सव्वेसिं जीवाणं रक्खणं च। णाणस्स पण्णावंतस्स लक्खणो 'पढमं णाणं तओ दया' (दस. 4/10) अत्थि। जहा उत्तमम्मि आसम्मि समारूढो अस्सवाहगो सूरो णंदि घोसेणं च परक्कमी होइ तहा पण्ण सीलो णाणेण समागओ सूरो होइ। सो णिय–णाणेणं जो पमासं कुणेइ सो इह जम्मम्मि य परजम्मम्मि य पगासए।

णाणेण विणा न हुंति चरमगुणा– णाणी णाणेण हि राजए। तेणं णाणेणं विणा सेट्ठगुणा ण राजए। णाणिस्स णाणं उवजोगो अत्थि णियं च परं च पगागए। णाणी/पण्णावंतो दीवसमो होंति। तो तमसो मा जोइगमो' भावं उप्पज्जइ।

णाणी तो पमायए कया वि – जो णाणी होइ सो पमायं वि करेइ। तस्स णाणे दंसणं सत्ती, जाणणं णिरक्खणं च अपुव्वसत्ती होइ।

पण्ण हवंति धीरा – जो पण्ण हवेंति ते धीरा वि। अपण्णा धीरा ण। ते न कम्मुणाा कम्म खवंति बाला। कण्णाणी अम्मलीला ण हवेंति, ण ते कम्माणं खवेंति। णाणी कम्माणं खवेंति उवसमेंति।

सव्वेसिं णाणं णाणीहिं देसियं – पंचविह – णाणं णाणीहिं भासियं। दब्वाणं गुणाणं च पज्जवाणं च देसियं। धम्मं अधम्मं गइं अगइं च वि देसिय।

सोच्चा जाणइ कल्याणं–णाणी धम्मं धम्ममग्गं धम्म–कल्याणकारी गुणं च सोच्चा जाणइ। सो चिंतइ णिच्चं–

एक्को हु धम्मो णरदेव! ताणं न विज्जइ अन्नमिहेइ किंचि। संजमो तवो अहिंसा परमो धम्मो' अणुचिंतइ सया सम्मणाणं सम्मदंमणं सम्मचारित्तं च समिक्खए। सो समिक्खए दयाकिसुद्ध धम्मं च।

BSER

# 2.
# रचनात्मक तथा व्यावहारिक लेखन

| | | |
|---|---|---|
| (I) | पठित प्राकृत सूक्तियों अथवा सुभाषितों का 50 से 60 शब्दों में प्राकृत में विशदीकरण | 10 |
| (II) | पाँच हिन्दी अथवा अंग्रेजी वाक्यों का प्राकृत में अनुवाद | 10 |
| (III) | पाँच प्राकृत के वाक्यों का हिन्दी अथवा अंग्रेजी में अनुवाद | 10 |

BSER

## (I)

## पठित प्राकृत सूक्तियों अथवा सुभाषितों का 50 से 60 शब्दों में प्राकृत में विशदीकरण

**(1) पाइयकव्वम्मि रसो जो जायइ, तह य छेयभणिएहिं। (वज्जालग्गं–21)**

रसिक लोगों के द्वारा कहा गया है कि प्राकृत काव्यों में जो रस है (वैसा अन्यत्र किसी भी काव्य में नहीं रहता)

**(2) अमयं पाइयकव्वं पढिउं सोउं च जे न जाणंति। (वज्जालग्गं–2)**

पढ़ने के लिए और सुनने के लिए जो प्राकृत काव्य है, वह अमृत के समान है। ऐसा जो नहीं जानते (वे लज्जा को क्यों नहीं प्राप्त होते।)

**(3) दुज्जणसंगे पत्ते सुयणो वि सुहं न पावेइ। (वज्जालग्गं–62)**

दुर्जन व्यक्ति का संसर्ग सज्जनों को भी सुख नहीं देता।

**(4) अत्थउ होइ अणत्थउ कामो वि गलंत–पेम्प–विरसओ (कुवलयमालाकहा–पैरा–4,गाथा–4)**

अर्थ अनर्थ को करने वाला होता है और काम पुरुषार्थ असफल प्रेम तथा विरसता पैदा करने वाला होता है।

**(5) चारित्तं खलु धम्मो (पवयणसारो–1/7)**

चारित्र ही धर्म है।

**(6) आदाणाणपमाणं (पवयणसारो–1/23)**

आत्मा ज्ञान प्रमाण है।

**(7) चंचलं सुरचाउ व्व विज्जुलेहेव चंचलं (कुम्मापुत्तचयिं–59)**

(जीवन) इन्द्रधनुष के समान चंचल एवं बिजली की चमक के समान चंचल (क्षणिक) है।

**(8) दव्वेण विणा ण गुणा गुणेहिं दव्वं विणा ण संभवदि। (पंचास्तिकाय–13)**

द्रव्य के बिना गुण तथा गुण के बिना दंव्य नहीं पाया जाता।

**(9) सज्जण–संगेण वि दुज्जणस्स ण हु कलुसिमा समोसरइ। (लीलावईकहा)**

सज्जन की संगति से निश्चय ही दुर्जन की कालिमा (दुष्टता) दूर नहीं होती, क्योंकि अंधकार के बिना चन्द्रमण्डल के बीच रहने वाला मृग भी काला ही रहता है।

**नोट :–** छात्र–छात्राओं को इसी तरह की और भी सूक्तियों एवं सुभाषितों का संग्रह प्राकृत काव्य साहित्य से करना चाहिए।

BSER

**(II)**

## पाँच हिन्दी अथवा अंग्रेजी वाक्यों का प्राकृत में अनुवाद

(1) मैं भोजन करके विश्वविद्यालय जाता हूँ। अहं भुंजिऊण विस्सविज्जालयं गच्छामि।

(2) राम ने रावण को मारा था

(3) पेड़ से पत्ता गिरता है।

(4) हम सबने मिलकर पुष्प चुनें हैं।

(5) तुम्हें प्रतिदिन पढ़ाई करना चाहिए।

(6) कल रविवार को अवकाश रहेगा।

(7) वे सभी पूजा करने के लिए मंदिर गईं थीं।

(8) मैंने आज पुस्तक पढ़कर ज्ञान प्राप्त किया था।

(9) वे सभी इस समय पूजा अर्चना करती हैं।

(10) राम का नाम प्रातःकाल में जपो।

(11) गुरू का नाम स्मरण करना चाहिए।

(12) वे सभी आज से ही विद्यालय में पढेंगीं।

(13) श्रेष्ठ विद्यालय में प्रवेश लेकर पढ़ाई करना चाहिए।

(14) अध्यापक के द्वारा प्रतिदिन शिक्षा दी जायेगी।

(15) घर में वे सभी कल नृत्य करेंगीं।

नोट :– छात्र–छात्राओं को इसी तरह के और भी वाक्य बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

BSER

## (III)

## पाँच प्राकृत के वाक्यों का हिन्दी अथवा अंग्रेजी में अनुवाद

### वर्तमान काल

| | | |
|---|---|---|
| (1) | अहं नमामि। | मैं नमस्कार करता हूँ। |
| (2) | अहं कहामि। | मैं कहता हूँ। |
| (3) | अम्हे नमामो। | हम सब नमस्कार करते हैं। |
| (4) | अम्हे कहामो। | हम सब कहते हैं। |
| (5) | तुमं नमसि। | तुम नमस्कार करते हो। |
| (6) | तुमं कहसि। | तुम कहते हो। |
| (7) | तुम्हे नमित्था। | तुम सब नमस्कार करते हो। |
| (8) | तुम्हे कहित्था। | तुम सब कहते हो। |
| (9) | सो / सा नमसि। | वह नमस्कार करता / करती है। |
| (10) | सो / सा कहसि। | वह कहता / कहती है। |
| (11) | ते / ताओ नमित्था। | वे सब नमस्कार करते / करती हैं। |
| (12) | ते / ताओ कहित्था। | वे सब कहते / कहती हैं। |

### भूतकाल

| | | |
|---|---|---|
| (1) | अहं नमीअ। | मैंने नमस्कार किया था। |
| (2) | अम्हे नमीअ। | हम सबने नमस्कार किया थां। |
| (3) | तुमं नमीअ। | तुमने नमस्कार किया था। |
| (3) | तुम्हे नमीअ। | तुम सबने नमस्कार किया थो। |
| (5) | सो / सा नमीअ। | उसने नमस्कार किया था। |
| (6) | ते / ताओ नमीअ। | उन सबने नमस्कार किया था। |

**नोट :–** भूतकाल का प्रयोग करने के लिए कर्त्ता के साथ प्रयुक्त क्रिया में 'ईअ' प्रत्यय लगाकर रूप बनाये जा सकते हैं।

### भविष्यत्काल

| | | |
|---|---|---|
| (1) | अहं नमिहिमि। | मैं नमस्कार करूँगा। |
| (2) | अम्हे नमिहामो। | हम सब नमस्कार करेंगे। |
| (3) | तुमं नमिहिसि। | तुम नमस्कार करोगे। |
| (3) | तुम्हे नमिहित्था। | तुम सब नमस्कार करोगे। |
| (5) | सो / सा नमिहिइ। | वह नमस्कार करेगा। |
| (6) | त / ताओ नमिहिंति । | वे सब नमस्कार करेंगे। |

**नोट :–(1)** भविष्यत्काल का प्रयोग करने के लिए कर्त्ता के साथ प्रयुक्त अकारान्त क्रियाओं में 'हि' प्रत्यय के स्थान पर 'स्स' प्रत्यय भी लगाकर रूप बनाये जा सकते हैं।

### विधि एवं आज्ञा :–

| | | |
|---|---|---|
| (1) | अहं नमीअ। | मैंने नमस्कार किया था। |
| (2) | अम्हे नमीअ। | हम सबने नमस्कार किया थां। |
| (3) | तुमं नमीअ। | तुमने नमस्कार किया था। |
| (3) | तुम्हे नमीअ। | तुम सबने नमस्कार किया थो। |
| (5) | सो / सा नमीअ। | उसने नमस्कार किया था। |
| (6) | ते / ताओ नमीअ। | उन सबने नमस्कार किया था। |

**नोट :–(1)** भूतकाल का प्रयोग करने के लिए कर्त्ता के साथ प्रयुक्त क्रिया में 'ईअ' प्रत्यय लगाकर रूप बनाये जा सकते हैं।

**(2)** अन्य क्रियाओं का प्रयोग करके इसी तरह और भी रूप बनाये जा सकते हैं।

BSER

# 3. प्राकृत व्याकरण
# का
# व्यवहारिक ज्ञान

BSER

# व्यवहारिक व्याकरण

## कारक एवं विभक्ति

**कारक** – किसी क्रिया के सम्पादन में जिन संज्ञा या सर्वनाम शब्दों को प्रयुक्त किया जाता है, उसे कारक कहते हैं।

**विभक्ति –** क्रिया सम्पादन में जो सम्बन्ध दिया जाता है, वह विभक्ति है। वे छह हैं – कर्त्ता > प्रथमा, कर्म > द्वितीया, करण > तृतीया, संप्रदान > चतुर्थी, अपादान > पंचमी, सम्बन्ध > षष्ठी और अधिकरण > सप्तमी सम्बोधन। कारकों का विभक्तियों से विशेष सम्बन्ध है, क्योंकि विभक्तियों से कारक और संख्या का बोध होता है।

**कर्त्ता कारक –** जो क्रिया करने में स्वतंत्र होता है और जिसके धातु के व्यापार का आश्रय होता है, उसे कर्त्ता कहते हैं।

**कर्म कारक –** क्रिया के फल के आश्रय को कर्म कारक कहते हैं।

**करण कारक –** जो क्रिया के सम्पादन में प्रमुख सहायक हो, वह करण कारक है।

**सम्प्रदान कारक –** जिसके लिए क्रिया की जाए, वह सम्प्रदान कारक है।

**अपादान कारक –** जिससे कोई वस्तु अलग हो, उसे अपादान कारक कहते हैं।

**सम्बन्ध कारक –** जिससे सम्बन्ध हो, वह सम्बन्ध कारक है।

**अधिकरण कारक –** क्रिया का आधार अधिकरण है।

## सम्बोधन –

## नियम निर्देश –

- प्राकृत में एकवचन और बहुवचन ही होता है।
- चतुर्थी और षष्ठी विभक्तियों में समानता है। इन दोनों में समान रूप चलते हैं।
- प्राकृत में हलन्त नहीं होता है।
- प्राकृत में विसर्ग नहीं होता है।

## अकारांत पुंलिंग शब्द –

बाल, पुरिस, छत, सीस, णर, णिव – जीव, बुह

## इकारान्त पुंलिंग शब्द –

सुधि, कवि, मुणि, जोणि, णाणि, पक्खि

## उकारांत पुंलिंग शब्द –

भाणु, सिसु, साहु, पिउ, गुरु, तरु

BSER

## अकारांत पुंलिंग प्रतीक प्रत्यय

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| | प्रथमा – | ओ    दीर्घ – आ |
| द्वितीया – | (–) | दीर्घ एवं ए |
| तृतीया – | ण–एण, णं–एणं | हि–एहि, एहिं |
| चतुर्थी – | स्स | ण–आण, णं–आणं |
| पंचमी – | त्तो, ओ | ओ, हिंतो |
| षष्ठी – | स्स | ण–आण, णं–आणं |
| सप्तमी – | ए, म्मि | सु–एसु, एसुं |
| संबोधन – | ण प्रत्यय लोप – ओ | आ |

## अ. पुंलिंग बालशब्द के रूप

| | | |
|---|---|---|
| प्रथमा | बालो | बाला |
| द्वितीया | बालं | बाला, बाले |
| तृतीया | बालेण, बालेणं | बालेहि, बालेहिं |
| चतुर्थी | बालस्स | बालाण, बालाणं |
| पंचमी | बालत्तो, बालाओ | बालाओ, बालहिंतो |
| षष्ठी | बालस्स | बालाण, बालाणं |
| सप्तमी | बाले, बालम्मि | बालेसु, बालेसुं |
| सम्बोधन | बाल! बालो! | बाला! |

**संकेत –** बाल शब्द की तरह छत, सीस, णर, णिव आदि के रूप बनेंगे।

**पहचानिए और शब्दों की विभक्तियाँ लिखिए –**

– बालस्स, सीसं, णिवत्तो, णरम्मि

## इकारांत पुंलिंग प्रतीक प्रत्यय

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथमा | लुक् – दीर्घ | लुक् – दीर्घ, णो |
| द्वितीया | (–) अनुसार | लुक् – दीर्घ, णो |
| तृतीया | णा | हि – हिं होने पर दीर्घ |
| चतुर्थी | स्स, णो | ण, णं होने पर दीर्घ |
| पंचमी | ओ होने पर दीर्घ | ओ, हिंतो होने पर दीर्घ |
| षष्ठी | स्स, णो | ण, णं होने पर दीर्घ |

BSER

| | | |
|---|---|---|
| सप्तमी | म्मि | सु – सुं होने पर दीर्घ |
| सम्बोधन | प्रत्यय लोप | लुक् – दीघ्र |

## इ. पुंलिंग मुणि शब्द के रूप

| | **एकवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| प्रथमा | मुणी | मुणी, मुणिणो |
| द्वितीया | मुणिं | मुणि, मुणिणो |
| तृतीया | मुणिणा | मुणीहि, मुणीहिं |
| चतुर्थी | मुणिस्स, मुणिणो | मुणीण, मुणीणं |
| पंचमी | मुणीओ | मुणीओ, मुणीहिंतो |
| षष्ठी | मुणिस्स, मुणिणो | मुणीण, मुणीणं |
| सप्तमी | मुणिम्मि | मुणीसु, मुणीसुं |
| सम्बोधन | मुणि! | मुणी! |

## उकारान्त पुंलिंग प्रतीक प्रत्यय

| | **एकवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| प्रथमा | दीर्घ | दीर्घ, णो |
| द्वितीया | (–) अनुस्वार | दीर्घ, णो |
| तृतीया | णा | हि, हिं |
| चतुर्थी | स्स, णो | ण, णं |
| पंचमी | ओ | ओ, हिंतो, सुंतो |
| षष्ठी | स्स, णो | ण, णं |
| सप्तमी | म्मि | सु, सुं |
| सम्बोधन | लुक् | दीर्घ |

## उकारान्त पुंलिंग 'भाणु' शब्द रूप

| | **एकवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| प्रथमा | भाणू | भाणू, भाणुणो |
| द्वितीया | भाणुं | भाणू, भाणुणो |
| तृतीया | भाणुणा | भाणूहि, भाणूहिं |
| चतुर्थी | भाणुस्स, भाणुणो | भाणूण, भाणूणं |
| पंचमी | भाणूओ | भाणूओ, भाणूहिंतो, भाणूसुंतो |
| षष्ठी | भाणुस्स, भाणुणो | भाणूण, भाणूणं |

BSER

| | | |
|---|---|---|
| सप्तमी | भाणुम्मि | भाणूसु, भाणूसुं |
| सम्बोधन | भाणु! | भाणू! |

**संकेत –** 'भाणु' शब्द की तरह साहु, सिसु, गुरु, तरु, पसु, भिक्खु आदि के रूप बनेंगे।

– ण णं, सु सुं, ओ, हिंतो, सुंतो अव्यय होने पर ह्रस्व उकारांत शब्दों का दीर्घ हो जाता है।

– दीर्घ उकारांत शब्दों का दीर्घ ही रहता है।

– स्स, णो प्रत्यय होने पर दीर्घ का ह्रस्व हो जाता है। जैसे– केवलिस्स, केवलिणो, जंबुस्स, जंबुणो

**संकेत –** मुणि इकारांत पुंलिंग शब्द की तरह सुधि, कवि, जोगि, णाणि के रूप बनेंगे।

**पहचानिए और शब्दों की विभक्तियाँ बतलाइए –**

मुणिणो, मुणीणं, कविणा, सुधिम्मि

---xxx---

## स्त्रीलिंग शब्द

**आकारांत स्त्रीलिंग शब्द**

बाला, माला, सरिआ, कण्णा, णिसा, दिसा, सुण्हा, भारिआ

**ईकारांत स्त्रीलिंग शब्द**

जुवई, रई, साडी, इत्थी, दासी, तरुणी, बहिणी

**उकारांत स्त्रीलिंग शब्द**

बहु, धेणु, विज्जु, चंचु

## आकारांत स्त्रीलिंग प्रतीक प्रत्यय

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथमा | दीर्घ | दीर्घ, ओ–आओ |
| द्वितीया | (–) अनुस्वार होने पर दीर्घ शब्द का ह्रस्व | दीर्घ, ओ–आओ |
| तृतीया | ए | हि हिं |
| चतुर्थी | ए | ण, णं |
| पंचमी | ए, हिंतो | ओ, सुंतो |
| षष्ठी | ए | ण, णं |
| सप्तमी | ए | सु, सुं |
| संबोधन | ह्रस्व | दीर्घ |

## आकारांत स्त्रीलिंग 'माला' शब्द के रूप

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथमा | माला | माला, मालाओ |
| द्वितीया | मालं | माला, मालाओ |

| | | |
|---|---|---|
| तृतीया | मालाए | मालाहि, मालाहिं |
| चतुर्थी | मालाए | मालाण, मालाणं |
| पंचमी | मालाए, मालाहिंतो | मालाओ, मालासुंतो |
| षष्ठी | मालाए | मालाण, मालाणं |
| सप्तमी | मालाए | मालासु, मालासुं |
| सम्बोधन | माल! | माला! |

**संकेत –** 'माला' शब्द की तरह बाला, सरिआ, कण्णा, दिसा, गिरा आदि के रूप चलेंगे।

**पहचानिए और शब्दों की विभक्तियाँ बतलाइए –**

मालाए, मालाओ, माल!, मालाहि

## ईकारांत स्त्रीलिंग के प्रतीक प्रत्यय

| | **एकवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| प्रथमा | प्रत्यय लोप | लुक्–दीर्घ ओ |
| द्वितीया | (–) अनुस्वार दीर्घ का ह्रस्व | लुक्–दीर्घ ओ |
| तृतीया | ए | हि हिं |
| चतुर्थी | ए | ण णं |
| पंचमी | ए, ओ | हिंतो, सुंतो |
| षष्ठी | ए | ण णं |
| सप्तमी | ए | सु सुं |
| सम्बोधन | लुक्, ह्रस्व | दीर्घ |

## ईकारांत स्त्रीलिंग 'इत्थी' शब्द के रूप

| | **एकवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| प्रथमा | इत्थी | इत्थी, इत्थीओ |
| द्वितीया | इत्थिं | इत्थी, इत्थीओ |
| तृतीया | इत्थीए | इत्थीहि, इत्थीहि |
| चतुर्थी | इत्थीए | इत्थीण, इत्थीणं |
| पंचमी | इत्थीए, इत्थीओ | इत्थीहिंतो, इत्थीसुंतो |
| षष्ठी | इत्थीए | इत्थीण, इत्थीणं |
| सप्तमी | इत्थीए | इत्थीसु, इत्थीसुं |
| सम्बोधन | इत्थि! | इत्थी! इत्थीओ! |

**संकेत –** इत्थी शब्द की तरह साडी, दासी, जुवई, कुमारी, तरुणी आदि के रूप चलेंगे।

BSER

**पहचानिए और शब्दों की विभक्तियाँ बतलाइए –**

इत्थिं, इत्थीहि, इत्थीसुंतो, इत्थीए

## उकारांत स्त्रीलिंग के प्रतीक प्रत्यय

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथमा | लुक् – दीर्घ | लुक् – दीर्घ, ओ |
| द्वितीया | (–) अनुस्वार | लुक् – दीर्घ, ओ |
| तृतीया | ए | हि हिं |
| चतुर्थी | ए | ण णं |
| पंचमी | ए, ओ | हिंतो, सुंतो |
| षष्ठी | ए | ण णं |
| सप्तमी | ए | सु सुं |
| सम्बोधन | ह्रस्व | दीर्घ |

## उकारांत स्त्रीलिंग 'धेणु' शब्द के रूप

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथमा | धेणू | धेणू, धेणूओ |
| द्वितीया | धेणुं | धेणू, धेणूओ |
| तृतीया | धेणूए | धेणूहि, धेणूहिं |
| चतुर्थी | धेणूए | धेणूण, धेणूणं |
| पंचमी | धेणूए, धेणूओ | धेणूहिंतो, धेणूसिंतो |
| षष्ठी | धेणूए | धेणूण, धेणूणं |
| सप्तमी | धेणूए | धेणूसु, धेणूसुं |
| सम्बोधन | धेणु! | धेणू! |

**संकेत –** धेणु शब्द की तरह विज्जु, चंचु, गड, रज्जु आदि के रूप बनेंगे।

**पहचानिए और विभक्तियाँ बतलाइए –**

धेणुं, धेणूए, धेणूसु, धेणूसुंतो

## अकारांत नपुंसकलिंग प्रतीक प्रत्यय

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथमा | (–) | इ इं णि होने पर दीर्घ |
| द्वितीया | (–) | इ इं णि होने पर दीर्घ |
| तृतीया | ण–एण | हि–एहि, हिं–एहिं |
| चतुर्थी | स्स | ण णं |

BSER

| | | |
|---|---|---|
| पंचमी | ओ | ओ हिंतो सुंतो |
| षष्ठी | स्स | ण णं |
| सप्तमी | ए म्मि | सु सुं |

## अकारांत नपुंसकलिंग 'फल' शब्द के रूप

| | **एकवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| प्रथमा | फलं | फलाइ, फलाइं, फलाणि |
| द्वितीया | फलं | फलाइ, फलाइं, फलाणि |
| तृतीया | फलेण | फलेहि, फलेहिं |
| चतुर्थी | फलस्स | फलाण, फलाणं |
| पंचमी | फलाओ | फलाओ, फलाहिंतो, फलासुंतो |
| षष्ठी | फलस्स | फलाण, फलाणं |
| सप्तमी | फले, फलम्मि | फलेसु, फलेसुं |

**संकेत –** फल शब्द की तरह पुप्फ, कमल, धण, कम्म, मित, सुह, दुह आदि के रूप चलेंगे।

**पहचानिए और विभक्तियाँ बतलाइए –**

फलं, फलाणि, फलाओ, फलाण, फलेसु

## इकारांत नपुंसकलिंग प्रतीक प्रत्यय

| | **एकवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| प्रथमा | (–) | इ इं णि होने पर दीर्घ |
| द्वितीया | | इ इं णि होने पर दीर्घ |
| तृतीया | णा | हि हिं होने पर दीर्घ |
| चतुर्थी | स्स णो | ण णं होने पर दीर्घ |
| पंचमी | ओ हिंतो होने पर दीर्घ | ओ सुंतो होने पर दीर्घ |
| षष्ठी | स्स णो | ण णं होने पर दीर्घ |
| सप्तमी | म्मि | सु सुं होने पर दीर्घ |

## इकारांत नपुंसकलिंग 'वारि' शब्द रूप

| | **एकवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| प्रथमा | वारिं | वाराइ, वाराइं, वारीणि |
| द्वितीया | वारिं | वाराइ, वाराइं, वारीणि |
| तृतीया | वारिणा | वारीहि, वारीहिं |
| चतुर्थी | वारिस्स वारिणो | वारीण वारीणं |
| पंचमी | वारीओ वारीहिंतो | वारीओ वारीसुंतो |

BSER

| | | |
|---|---|---|
| षष्ठी | वारिस्स | वारीण, वारीणं |
| सप्तमी | वारिम्मि | वारीसु, वारीसुं |

**संकेत –** वारि की तरह दहि, अक्खि, अट्ठि आदि के रूप चलेंगे।

**पहचानिए और विभक्तियाँ बतलाइए –**

वारिं, वारीइं, वारिम्मि, वारीणं

## उकारांत नपुंसकलिंग 'वत्थु' शब्द

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथमा | वत्थुं | वत्थूइ, वत्थूइं, वत्थूणि |
| द्वितीया | वत्थुं | वत्थूइ, वत्थूइं, वत्थूणि |
| तृतीया | वत्थुणा | वत्थूहि वत्थूहिं |
| चतुर्थी | वत्थुस्स वत्थुणो | वत्थूण वत्थूणं |
| पंचमी | वत्थूओ वत्थूहिंतो | वत्थूओ वत्थूसुंतो |
| सप्तमी | वत्थुम्मि | वत्थूसु, वत्थूसुं |

**संकेत –** वत्थु शब्द की तरह महु, अंसु आदि के रूप चलेंगे।

## अकारांत पुंलिंग 'पुरिस' शब्द

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथमा | पुरिसो | पुरिसा |
| द्वितीया | पुरिसं | पुरिसा, पुरिसे |
| तृतीया | पुरिसेण, पुरिसेणं | पुरिसेहि, पुरिसेहिं |
| चतुर्थी | पुरिसस्स | पुरिसाण, पुरिसाणं |
| पंचमी | पुरिसत्तो, परिसाओ | पुरिस्सो, पुरिसाओ, पुरिसाहिंतो, पुरिसासुंतो |
| षष्ठी | परिसहस | पुरिसाण, पुरिसाणं |
| सप्तमी | पुरिसे, पुरिसम्मि | पुरिसेसु, परिसेसुं |
| सम्बोधन | पुरिस! पुरिसो! | परिसा! |

**संकेत –** 'पुरिस' की तरह णिव, सीस, जीव, बुह आदि के रूप चलेंगे।

## अकारांत पुंलिंग 'णर' शब्द

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथमा | णरो | णरा |
| द्वितीया | णरं | णरा, णरे |
| तृतीया | णरेण, णरेणं | णरेहि, णरेहिं |
| चतुर्थी | णरस्स | णराण, णराणं |

| | | |
|---|---|---|
| पंचमी | णरत्तो, णराओ | णरत्तो, णराओ, णराहिंतो, णरासुंतो |
| षष्ठी | णरस्स | णराण, णराणं |
| सप्तमी | णरे, णरम्मि | णरेसु, णरेसुं |
| सम्बोधन | णर! णरो! | णरा! |

**संकेत –** 'णर' की तरह छत, विमल, उसह, पास आदि के रूप चलेंगे।

## इकारांत 'सुधि' शब्द के रूप

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथमा | सुधी | सुधी, सुधिणो |
| द्वितीया | सुधिं | सुधी, सुधिणो |
| तृतीया | सुधिणा | सुधीहि, सुधीहिं |
| चतुर्थी | सुधिस्स, सुधिणो | सुधीण, सुधीणं |
| पंचमी | सुधित्तो, सुधीओ, सुधिणो | सुधित्तो, सुधीओ, सुधीहिंतो, सुधीसुंतो |
| षष्ठी | सुधिस्स, सुधिणो | सुधीण, सुधीणं |
| सप्तमी | सुधिम्मि | सुधीसु, सुधीसुं |
| सम्बोधन | सुधि! | सुधी! |

**संकेत –** 'सुधि' की तरह कवि, करि, हरि आदि के रूप चलेंगे।

– सुधि में या अन्य इकारांत शब्द में (–) अनुस्वार होने पर सुधिं, दीर्घ ईकारांत केवली या वाणी शब्द होने पर दीर्घ का ह्रस्व हो जाता है। केवली (–) = केवलिं, वाणी +(–) वाणिं।

## इकारांत पुंलिंग 'कवि' शब्द

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथमा | कवि–दीर्घ–कवी | कवि–दीर्घ कवी, |
| कवि+णो=कविणो | | |
| द्वितीया | कविं | कवी, कविणो |
| तृतीया | कविणा | कवीहि, कवीहिं |
| चतुर्थी | कविस्स, कविणो | कवीण, कवीणं |
| पंचमी | कवित्तो, कवीओ, कविणो | कवित्तो, कवीओ, कवीहिंतो, कवीसुंतो |
| षष्ठी | कविस्स | कवीण, कवीणं |
| सप्तमी | कविम्मि | कवीसु, कवीसुं |
| सम्बोधन | कवि! | कवी! |



BSER

**संकेत –** णो, णा, स्स, म्मि, तो होने पर दीर्घ नहीं होता है।

– संयोगी स्स, म्मि, तो प्रत्यय है, जिन्हें संयुक्त व्यंजन कहते हैं।

– स्स, म्मि, तो संयुक्त हैं, इनके होने पर दीर्घ ईकारांत केवली, णाणी के दीर्घ 'ई' का ह्रस्व 'इ' हो जाता है। यथा, केवली+स्स = केवलिस्स।

– केवली+तो = केवलितो।

– केवली+म्मि = केवलिम्मि।

## उकारांत पुंलिंग 'साहु' शब्द

| | **एकवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| प्रथमा | साहू | साहू, साहुणो |
| द्वितीया | साहुं | साहू, साहुणो |
| तृतीया | साहुणा | साहूहि, साहूहिं |
| चतुर्थी | साहुस्स, साहुणो | साहूण, साहूणं |
| पंचमी | साहुतो, साहूओ | साहुतो, साहूओ, साहूहिंतो, साहूसुंतो |
| षष्ठी | साहुस्स, साहुणो | साहुण, साहूणं |
| सप्तमी | साहुम्मि | साहुसू, साहूसुं |
| सम्बोधन | साहु! | साहू! |

**संकेत –** ण, णं (चतुर्थी/षष्ठी बहुवचन) हि हिं (तृतीया बहुवचन)।

– ओ हिंतो/सुंतो (पंचमी बहुवचन) ओ (पंचमी एकवचन)।

– सु, सुं सप्तमी बहुवचन के प्रत्यय होने पर दीर्घ हो जाता है।

## उकारांत पुंलिंग 'गुरु' शब्द

| | **एकवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| प्रथमा | गुरु | गुरु, गुरुणो |
| द्वितीया | गुरुं | गुरु, गुरुणो |
| तृतीया | गुरुणा | गुरुहि, गुरुहिं |
| चतुर्थी | गुरुस्स, गुरुणो | गुरुण, गुरुणं |
| पंचमी | गुरुतो, गुरुओ, गुरुणो | गुरुतो, गुरुओ, गुरुहिंतो, गुरुसुंतो |
| षष्ठी | गुरुस्स, गुरुणो | गुरुण, गुरुणं |
| सप्तमी | गुरुम्मि | गुरुसु, गुरुसुं |
| सम्बोधन | गुरु! | गुरु! |

## आकारांत स्त्रींलिंग 'सरिआ' शब्द

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथमा | सरिआ | सरिआ, सरिआओ |
| द्वितीया | सरिअं | सरिआ, सरिआओ |
| तृतीया | सरिआइ, सरिआए | सरिआहि, सरिआहिं |
| चतुर्थी | सरिआइ, सरिआए | सरिआण, सरिआणं |
| पंचमी | सरिआइ, सरिआए | सरिआओ, सरिआहिंतो, सरिआसुंतो |
| षष्ठी | सरिआइ, सरिआए | सरिआण, सरिआणं |
| सप्तमी | सरिआइ, सरिआए | सरिआसु, सरिआसुं |
| सम्बोधन | सरिआ! | सरिआओ! |

**संकेत –** सरिआ की तरह भारिया, दिरसा, गिरा आदि के रूप बनेंगे।

## आकारांत स्त्रींलिंग 'णिसा' शब्द

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथमा | णिसा | णिसा, णिसाओ |
| द्वितीया | णिसं | णिसा, णिसाओ |
| तृतीया | णिसाइ, णिसाए | णिसाहि, णिसाहिं |
| चतुर्थी | णिसाइ, णिसाए | णिसाण, णिसाणं |
| पंचमी | णिसाइ, णिसाए | णिसाओ, णिसाहिंतो, णिसासुंतो |
| षष्ठी | णिसाइ, णिसाए | णिसाण, णिसाणं |
| सप्तमी | णिसाइ, णिसाए | णिसासु, णिसासुं |
| सम्बोधन | णिसा! | णिसाओ! |

## ईकारांत स्त्रींलिंग 'दासी' शब्द

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथमा | दासी | दासी, दासीओ |
| द्वितीया | दासिं | दासी, दासीओ |
| तृतीया | दासीइ, दासीए | दासीहि, दासीहिं |
| चतुर्थी | दासीइ, दासीए | दासीण, दासीणं |
| पंचमी | दासीइ, दासीए | दासीओ, दासीहिंतो, दासीसुंतो |
| षष्ठी | दासीइ, दासीए | दासीण, दासीणं |
| सप्तमी | दासीइ, दासीए | दासीसु, दासीसुं |
| सम्बोधन | दासि! | दासी! दासीओ! |

BSER

**संकेत** – दासी की तरह लच्छी, इत्थी, तरुणी आदि के रूप चलेंगे।

## ईकारांत स्त्रींलिंग 'बहिणी' शब्द

| | **एकवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| प्रथमा | बहिणी | बहिणी, बहिणीओ[1] |
| द्वितीया | बहिणि | बहिणी, बहिणीओ |
| तृतीया | बहिणीइ, बहिणीए[2] | बहिणीहि, बहिणीहिं |
| चतुर्थी | बहिणीइ, इहिणीए | बहिणीण, बहिणीणं |
| पंचमी | बहिणीइ, बहिणीए | बहिणीओ, बहिणीहिंतो, बहिणीसुंतो |
| षष्ठी | बहिणीइ, बहिणीए | बहिणीण, बहिणीणं |
| सप्तमी | बहिणीइ, बहिणीए | बहिणीसु, बहिणीसुं |
| सम्बोधन | बहिणि! | बहिणीओ! |

**संकेत – 1.** स्त्रियामुदोतौ वा (हे.प्रा.व्या. 3/27) सूत्र से स्त्रीलिंग शब्दों के प्रथमा बहुवचन और द्वितीया बहुवचन में ओ और 'उ' प्रत्यय होते हैं। यथा–बहिणी+ओ=बहिणीओ, बहिणी+उ= बहिणीउ।

**2**. टा–ङस्–ङेरदादिदेद्वा तु ङसेः (हे. प्रा. व्या. 3/29) से स्त्रीलिंगवाची शब्दों में अ, आ, इ, ए प्रत्यय होते हैं।

## अकारांत नपुंसकलिंग 'णयण' शब्द

| | **एकवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| प्रथमा | णयणं | णयणाइ, णयणाइं, णयणाणि |
| द्वितीया | णयणं | णयणाइ, णयणाइं, णयणाणि |
| तृतीया | णयणेण, णयणेणं | णयणेहि, णयणेहिं |
| चतुर्थी | णयणस्स | णयणाण, णयणाणं |
| पंचमी | णयणतो, णयणाओ | णयणतो, णयणाओ, णयणाहिंतो, णयणासुंतो |
| षष्ठी | णयणस्स | णयणाण, णयणाणं |
| सप्तमी | णयणे, णयणम्मि | णयणेसु, णयणेसुं |

**संकेत – 1.** जस्–शस्–इ इं णयः सप्राग्दीर्घः (हे. 3/26) जस् (प्रथमा बहुवचन) और शस् (द्वितीया बहुवचन) के प्रत्यय के स्थान पर इ, इं और णि प्रत्यय होते हैं और इसी सूत्र से दीर्घ हो जाता है। अतः णयण+इ=णयणाइ, णयण+इं= णयणाइं, णयण+णि=णयणाणि।

## अकारांत नपुंसकलिंग 'ध्ण' शब्द

| | **एकवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| प्रथमा | धणं | धणाइ, धणाइं, धणाणि |
| द्वितीया | धणं | धणाइ, धणाइं, धणाणि |
| तृतीया | धणेण, धणेणं | धणेहि, धणेहिं |
| चतुर्थी | धणस्स | धणाण, धणाणं |

| | | |
|---|---|---|
| पंचमी | धणतो, धणाओ | धणतो, धणाओ, धणाहिंतो, धणासुंतो |
| षष्ठी | धणस्स | धणाण, धणाणं |
| सप्तमी | धणे, धणम्मि | धणेसु, धणेसुं |
| सम्बोधन | धण![1] | धणाइ! |

**संकेत – 1.** नामन्त्र्यात् सौ मः (हे.प्रा.व्या. 3/37) सूत्र से आमंत्रण (संबोधन) में अनुस्वार (–) नहीं होता है।

## इकारांत नपुंसकलिंग 'दहि' शब्द

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथमा | दहिं | दहीइ, दहीइं, दहीणि |
| द्वितीया | दहिं | दहीइ, दहीइं, दहीणि |
| तृतीया | दहिणा | दहीहि, दहीहिं |
| चतुर्थी | दहिस्स, दहिणो | दहीण, दहीणं |
| पंचमी | दहितो, दहीसो, दहिणो | दहितो, दहीओ, दहीहिंतो, दहीसुंतो |
| षष्ठी | दहिस्स, दहिणो | दहीण, दहीणं |
| सप्तमी | दहिम्मि | दहीसु, दहीसुं |
| सम्बोधन | दहि! | दहि! |

## उकारांत नपुंसकलिंग 'महु' शब्द

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथमा | महुं | महुइ, महूइं, महूणि |
| द्वितीया | महुं | महूइ, महूइं, महूणि |
| तृतीया | महुणा | महूहि, महूहिं |
| चतुर्थी | महुस्स, महुणो | महूण, महूणं |
| पंचमी | महुतो, महूओ, महुणो | महुतो, महूओ, महूहिंतो, महूसुंतो |
| षष्ठी | महुस्स, महुणो | महूण, महूणं |
| सप्तमी | महुम्मि | महूसु, महूसुं |
| सम्बोधन | महु! | महु! |

**संकेत –** महु की तरह चंचु के रूप चलेंगे।

### अभ्यास

## वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. अकारांत पुंलिंग शब्द इनमें से कौन ?

(क) दहि (ख) महु

(ग) णर (घ) सुधि ( )

2. इकारांत पुंलिंग शब्द इनमें से कौन ?

(क) मुणि (ख) भाणु

(ग) णर (घ) जंबू ( )

3. उकारांत पुंलिंग शब्द इनमें से कौन ?

(क) कवि (ख) खंध

(ग) सरिआ (घ) साहु ( )

4. आकारांत स्त्रीलिंग शब्द इनमें से कौन ?

(क) सासू (ख) दासी

(ग) कण्णा (घ) धेणु ( )

5. उकारांत स्त्रीलिंग शब्द इनमें से कौन ?

(क) धण (ख) धेणु

(ग) दासी (घ) णिसा ( )

6. ईकारांत स्त्रीलिंग शब्द इनमें से कौन ?

(क) विज्जु (ख) जुवई

(ग) बहू (घ) माला ( )

7. अकारांत नपुंसकलिंग शब्द इनमें से कौन ?

(क) णयर (ख) दहि

(ग) महु (घ) वाया ( )

## वस्तुनिष्ठ प्रश्न की उत्तर माला

1–(ग), 2–(क), 3–(घ), 4–(ग), 5–(ख), 6–(ख), 7–(क)

## अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. प्राकृत में कितने वचन होते हैं ?
2. चतुर्थी का रूप कौनसा है ? अकारांत में।
3. तृतीया एकवचन में 'दहि' का क्या रूप बनेगा ?
4. पंचमी बहुवचन में 'माला' का क्या रूप बनेगा ?
5. स्त्रीलिंग में तृतीया से सप्तमी एकवचन में कौनसे रूप बनेंगे ?
6. नपुंसकलिंग के प्रथमा में कौनसा रूप बनेगा ?

## लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. इकारांत पुंलिंग के पंचमी के रूप लिखिए।
2. सीस पुंलिंग के सभी रूप लिखिए।
3. बाला स्त्रीलिंग के तृतीया से सप्तमी तक के सभी रूप लिखिए।

BSER

4. नपुंसकलिंग में प्रथमा एवं द्वितीया को छोड़कर शेष तृतीया से सम्बोधन तक के रूप किस लिंग की तरह रूप बनेंगे ?

**निम्नांकित शब्दों में कौनसी विभक्ति है ?**

1. बालाण ( )
2. मालासुंतो ( )
3. दहीइ ( )
4. मुणीसु ( )
5. णयरस्स ( )
6. णिसाहि ( )

**विभक्तियों का सही निर्देश कीजिए –**

| | |
|---|---|
| (क) तृतीया | (1) दहीइ |
| (ख) प्रथमा बहुवचन | (2) महुस्स |
| (ग) सप्तमी | (3) मुणिणा |
| (घ) चतुर्थी | (4) घणम्मि |

**शब्दों की उत्तरमाला**

(क)–(3), (ख)–(1), (ग)–(4), (घ)–(2)

BSER

## प्राकृत क्रिया प्रकरण

- वर्तमान काल (लट्लकार)
- भविष्यत् काल (लृट्लकार)
- विधि–आज्ञार्थक
- भूतकाल (लिट्लकार)

### वर्तमानकाल प्रतीक प्रत्यय

| | **एकवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| प्रथम पुरुष | इ | न्ति > अंति |
| मध्यम पुरुष | सि | इत्था |
| उत्तम पुरुष | मि > आमि | मो > आमो |

### वर्तमानकाल 'भण' क्रिया (कहना)

| | | |
|---|---|---|
| प्रथम पुरुष | भणइ | भणंति |
| मध्यम पुरुष | भणसि | भणित्था |
| उत्तम पुरुष | भणामि | भणामो |

**संकेत –** गच्छ (To go), पिव (To drink), भुंज (To eat), हस (To laugh), पढ़ (To read) इत्यादि क्रियाओं के रूप भण की तरह चलेंगे।

**पहचानिए और क्रिया का पुरुष एवं वचन बतलाइए –**

भणामि, भणसि, भणइ

### भविष्यत्काल के प्रतीक प्रत्यय

| | **एकवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| प्रथम पुरुष | स्स+इ | स्स+न्ति, अंति |
| मध्यम पुरुष | स्स+सि | स्स+इत्था |
| उत्तम पुरुष | स्स+मि | स्स+मो |

### भविष्यत्काल की पहचान 'स्स' 'पढ' के रूप

| | | |
|---|---|---|
| प्रथम पुरुष | पढिस्सइ | पढिस्संति |
| मध्यम पुरुष | पढिस्ससि | पढिस्सित्था |
| उत्तम पुरुष | पढिस्सामि | पढिस्सामो |

**संकेत –** इच्छ (To wish), सुण (To hear), भुंज (To eat), णच्च (To dance), पास (To see) इत्यादि के रूप चलेंगे।

BSER

**पहचानिए और क्रिया का पुरुष एवं वचन बतलाइए –**

पढिस्संति पढिस्सित्था पढिस्सामो

## विधि/आज्ञार्थक प्रतीक प्रत्यय

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथम पुरुष | उ | न्तु > अंतु |
| मध्यम पुरुष | हि | ह |
| उत्तम पुरुष | मु | मो |

## विधि/आज्ञार्थक 'हस' (हसना) के रूप

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथम पुरुष | हसउ | हसंतु |
| मध्यम पुरुष | हसहि | हसह |
| उत्तम पुरुष | हसमु | हसमो |

**संकेत –** हस की तरह चिंत (To think), चल (To move), भम (To roam), सेव (To serve), कील (To play) इत्यादि के रूप चलेंगे।

**पहचानिए और क्रिया का पुरुष एवं वचन बतलाइए –**

हसउ हसमु हसह

## भूतकाल के प्रतीक प्रत्यय

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथम पुरुष | ईअ | ईअ |
| मध्यम पुरुष | ईअ | ईअ |
| उत्तम पुरुष | ईअ | ईअ |

## भूतकाल 'णम' (नमन करना) के रूप

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथम पुरुष | णमीअ | णमीअ |
| मध्यम पुरुष | णमीअ | णमीअ |
| उत्तम पुरुष | णमीअ | णमीअ |

## 'दा' देना धातु के रूप

## वर्तमान काल

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथम पुरुष | देइ | देंति |
| मध्यम पुरुष | देसि | देइत्था |
| उत्तम पुरुष | देमि | देमो |

BSER

**भविष्यत् काल 'हि'**

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथम पुरुष | दाहिइ | दाहिति |
| मध्यम पुरुष | दाहिसि | दाहित्था |
| उत्तम पुरुष | दाहिमि | दाहिमो |

## विधि/आज्ञार्थक 'दा' धातु

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथम पुरुष | देउ | देतु |
| मध्यम पुरुष | देहि | देह |
| उत्तम पुरुष | देमु | देमो |

## भूतकाल 'दा' धातु

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथम पुरुष | दासी, दाही, दाहीअ | दासी, दाही, दाहीअ |
| मध्यम पुरुष | दासी, दाही, दाहीअ | दासी, दाही, दाहीअ |
| उत्तम पुरुष | दासी, दाही, दाहीअ | दासी, दाही, दाहीअ |

**संकेत** – दा की तरह णे, हो आदि के रूप चलेंगे।

## क्रिया रूप

## वर्तमान काल[1] – जाण (जानना)

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथम पुरुष | जाणइ | जाणंति |
| मध्यम पुरुष | जाणसि | जाणित्था |
| उत्तम पुरुष | जाणामि | जाणामो |

## भविष्यत्काल – जाण

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथम पुरुष | जाणिस्सइ | जाणिस्संति |
| मध्यम पुरुष | जाणिस्ससि | जाणिस्सित्था |
| उत्तम पुरुष | जाणिस्सामि | जाणिस्सामो |

**संकेत – 1.** त्यादिनामाद्यत्रयस्याधस्येचे–चौ (हे.प्रा.व्या. 3/139) द्वितीयस्य सि से (हे.प्रा.व्या. 3/140), तृतीयस्य मिः (हे.प्रा. व्या. 3/141), बहुष्वाद्यस्य न्ति न्ते इरे (हे.प्रा.व्या. 3/142), मध्यस्येत्था हचौ (हे.प्रा.व्या. 3/143), तृतीयस्य मो मु माः (हे.प्रा.व्या. 3/144)।

## विधि/आज्ञा[1] – जाण

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथम पुरुष | जाणउ | जाणंतु |

| | | |
|---|---|---|
| मध्यम पुरुष | जाणहि | जाणह |
| उत्तम पुरुष | जाणमु | जाणमो |

**संकेत – 1.** दु सु मु अिवध्यादिष्वेकस्मिंत्रयाणाम् (हे.प्रा.व्या. 3/173) सो हिं र्वा (हे.प्रा.व्या. 3/174), बहुसु न्तु हमो (हे.प्रा.व्या. 3/176)।

## भूतकाल[2] – 'जाण'

| | **एकवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| प्रथम पुरुष | जाणीअ | जाणीअ |
| मध्यम पुरुष | जाणीअ | जाणीअ |
| उत्तम पुरुष | जाणीअ | जाणीअ |

**संकेत – 2.** व्यंजनादीअः (हे.प्रा.व्या. 3/163) भूतकाल में जाण, भण, हस, लिह आदि में ईअ प्रत्यय होता है।

– भूतकाल में का, ठा, णे जैसी क्रियाओं में सी ही और हीअ प्रत्यय होंगे। कासी, काही, काहीअ। ठासी, ठाही, ठाहीअ। णेसी, णेही, णेहीअ।

– तीनों पुरुषों के दोनों वचनों में समान रूप चलते हैं।

| | **एकवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| प्रथम पुरुष | सो कासी | ते कासी |
| मध्यम पुरुष | तुम कासी | तुम्हे कासी |
| उत्तम पुरुष | अहं कासी | अम्हे कासी |

सो कासी – उसने किया। ते कासी – उन्होंने किया।

तुम कासी – तूने किया। तुम्हे कासी – तुम/तुम दोनों/तुम सबने किया।

अहं कासी – मैंने किया। अम्हे कासी – हम/हम सबने किया।

– का – करना। ठा – ठहरना, रहना। णे – ले जाना।

– सी ही हीअ भूतार्थस्य (हे.प्रा.व्या. 3/162)

– अस – होना – अस्स्रित – का आति/अहेसि होगा। तेनास्तेराष्यहेसी (हे.प्रा.व्या. 3/164)

| | |
|---|---|
| सो असि/अहेसि | ते आसि/अहेसि |
| तुम आसि/अहेसि | तुम्हे आसि/अहेसि |
| अहं आसि/अहेसि | आहे आसि/अहेसि |

## वर्तमानकाल 'गच्छ' – जाना, गमन करना

| | **एकवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| प्रथम पुरुष | गच्छइ | गच्छंति |
| मध्यम पुरुष | गच्छसि | गच्छित्था, गच्छह |
| उत्तम पुरुष | गच्छामि | गच्छामो |

## भविष्यत्काल1 'गच्छ'

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथम पुरुष | गच्छिस्सइ | गच्छिस्संति |
| मध्यम पुरुष | गच्छिस्ससि | गच्छिस्सित्था |
| उत्तम पुरुष | गच्छिस्सामि | गच्छिस्सामो |

**संकेत – 1.** भविष्यत्काल में 'स्स' और 'हि' भी होता है। भविष्यति हिरादिः (हे.प्रा.व्या. 3/166)

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथम पुरुष | गच्छिहिइ | गच्छिहिंति |
| मध्यम पुरुष | गच्छिहिसि | गच्छिहिथा, गच्छिहिह |
| उत्तम पुरुष | गच्छिहिमि | गच्छिहिमो |

## विधि/आज्ञा 'गच्छ'

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथम पुरुष | गच्छउ | गच्छंतु |
| मध्यम पुरुष | गच्छहि | गच्छह |
| उत्तम पुरुष | गच्छमु | गच्छमो |

## भूतकाल 'गच्छ'

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथम पुरुष | गच्छीअ | गच्छीअ |
| मध्यम पुरुष | गच्छीअ | गच्छीअ |
| उत्तम पुरुष | गच्छीअ | गच्छीअ |

**संकेत –** भण – कहना। जाण – जानना। इच्छ – इच्छा करना। पिव – पीना, पान करना। खेल – खेलना। हस – हसना। पढ़ – पढ़ना। सुण – सुनना। णच्च – नाचना। दा – देना। ठो – ले जाना। हो/हव – होना।

### क्रियाएँ (VERBS)

| | | | |
|---|---|---|---|
| पास | पश्य | देखना | To See |
| धाव | धाव | दौड़ना | To Run |
| णम | नम् | नमन करना | To Salute |
| चल | चल् | चलना | To Walk |
| चिंत | चिन्त् | चिंतन करना/सोचना | To Think |
| भम | भ्रम् | घूमना | To Roam |
| जय | जी | जीतना | To Win |

BSER

| | | | |
|---|---|---|---|
| सेव | सेव् | सेवा करना | To Serve |
| भण | | कहना | To Told |
| पेस | | भेजना | To Send |
| कंद | क्रंद् | रोना / चिल्लाना | To Cry |
| कीण | क्रीड़ा | खेलना | To Play |
| पाल | पांल् | पालना / रक्षा करना | To Protect |
| सीख | | सीखना | |
| गज्ज | | गरजना | |
| पस्स | दृश् | देखना | To ैमम |
| कड्ढ | | निकालना | |
| छिन्न | | अलग करना | |
| दह | दह् | जलना | To Burn |
| सोह | | चमकना | To Shine |
| पड | पठ् | गिरना | To Fall |
| उट्ठ | | उठना | To Stand |
| जाण | | जानना | To Know |
| इच्छ | इष् | इच्छा करना | To Wish |
| पिव | | पीना | To Drink |
| गच्छ | गम् | जाना | To Go |
| खेल | | खेलना | To Play |
| हस | हस् | हंसना | To Laugh |
| पढ | पठ् | पढ़ना | To Read |
| लेह | | लिखना | To Write |
| सुण | श्रु | सुनना | To Hear |
| भुंज | | | |
| णच्च | | | |
| दा | | | |
| णे | | | |
| हो | | | |
| अस | | | |

BSER

## ग. कृदंत

| | |
|---|---|
| वर्तमानकालिक कृदंत | न्त, माण |
| सम्बन्ध कृदंत | ऊण |
| हेत्वर्थ कृदंत | तु > उ |
| विधि कृदंत | अव्व |

**वर्तमानकालिक कृदंत –** न्त माण प्रत्यय (होता हुआ हुए) के तीनों लिंगों में प्रयुक्त होंगे और इनके सभी विभक्तियों में रूप चलेंगे।

– न्त – भण + न्त + ओ = भणंतो
  बालो भणंतो गच्छइ
  बालक कहता हुआ जाता है।

– माण – हस + माण + ओ = हसमाणो – हंसता हुआ, हसमाणो बालो सोहइ = हँसता हुआ बालक अच्छा लगता है।

एकवचन एवं बहुवचन तथा सातों विभक्तियों में न्त, माण प्रत्यय लगने पर पुं. अकारांत बाल, स्त्रीलिंग आकारांत माला एवं अकारांत नपुंसकलिंग 'जल' आदि की तरह रूप चलेंगे।

| | **एकवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| प्रथमा | हसंतो | हसंता |
| द्वितीया | हसंत | हसंता, हसंते |

**सम्बन्ध कृदंत –** ऊण – करके

यथा पढ + ऊण = पढिऊण = पढ़कर
बालो पढिऊण आगच्छइद।

**हेत्वर्थ कृदंत –** तुं > उं = के लिए
पढ + उं = पढिउं = पढ़ने के लिए
बालो पढिउं गच्छइ।

**विधि कृदंत –** अव्व – योग्य, चाहिए

पढ + अव्व = पढिअव्व – पढिअव्वं
पोत्थअं पढिअव्वं अत्थि = पुस्तक पढ़ने योग्य है।
पढ + अणीअ = पढणीअं = पोत्थअं पढणीअं अत्थि।

**पहचानिए और कृदंत नाम बतलाइए –**

– णच्चंता सेवमाणो जयउं चिंतअव्वं।
– कृदंत बनाएं।
– वर्तमान कृदंत का प्रयोग कीजिए।
– विधि कृदंत का अव्वं किसी क्रिया में प्रयोग कीजिए।
– सम्बन्ध कृदंत का ऊण प्रत्यय लगाकर वाक्य बनाइए।

BSER

**विशेषण ज्ञान –** ऐसे प्रयोग जिनसे संज्ञा, सर्वनाम की विशेषता प्रकट हो।

– **अ का प्रयोग –** इस अ प्रत्यय के जुड़ने से शब्द के प्रथम स्वर की वृद्धि होती है।

अ > आ    इ > ई    इ ई > ए    उ ऊ > ओ

राहवो – रहुस्स पुत्रो – रघु का पुत्र।
णाहेय – णाहिस्स पुत्रो। पंडवो – पंडुस्स पुत्रो।
वसुदेवस्स पुत्रो – वासुदेवो।

– त – गुरु + त = गुरुत। लहु + त = लहुत (लघुता)

– तण – सिसु + तण = सिसुतण (शिशुता)
सुह + तण = सुहतण (शुभता)

– इल्ल – बाला या युक्त अर्थ में इल्ल प्रत्यय होता है। यथा– जस + इल्ल = जसिल्ल (यशस्वान्),
बुद्धिल्ल – बुद्धि+इल्ल (बुद्धिमान)
विज्जिल्ल – विश्ना+इल्ल (विद्यावान)
गुण+इल्ल – गुणिल्ल – (गुणवान्)।

**पहचानिए और बतलाइए –**

– महुरिल्ल    कासवो    जसत    सुहत    समतण

**कर्मणि प्रयोग ज्ञान –**

वाच्य–परिवर्तन के तीन भेद हैं –

(i) **कर्तृवाच्य –** जिसमें कर्त्ता के पुरुष एवं वचन के अनुसार क्रिया का पुरुष और वचन होता है। यथा – वीरो गच्छइ।

– वीरो – प्रथमा एकवचन और गच्छइ – प्रथम पुरुष एकवचन की है।

(ii) **कर्मवाच्य –** कर्ता में तृतीया, कर्म में प्रथमा और क्रिया के पुरुष एवं वचन कर्म के पुरुष और वचन के अनुकूल होते हैं, वहां कर्मवाच्य होता है। यथा – महावीरेणं समोधम्मो णिछिहो।

(iii) **भाववाच्य –** जहां क्रिया के अर्थ में प्रत्यय होता है, वहां भाववाच्य होता है। यथा –

**छतो हसइ (कर्तृवाच्य)**

**कर्मवाच्य क्रियाएँ**

कर/कुण – करना – करइ/कुणइ – कुणए

गच्छ – जाना – गच्छइ – गच्छए

पिव – पीना – पिवइ – पिवए

मुंच – छोड़ना – मुंचइ – मुंचए

पच – पचाना – पचइ – पचए

कील – खेलना – कीलइ – कीलए

पस्स – देखना – पस्सइ – पस्सए

BSER

जाण – जानना – जाणइ – जाणए

**छतेण हसिज्जइ (कर्मवाच्य)**

**भाववाच्य क्रियाएँ**

जण – पैदा होना – जणए

णच्च – नाचना – णच्चए

वस – रहना – वसए

सय – सोना – सयए

चिट्ठ – बैठना – चिट्ठए

भय – डरना – भयए

हव/हो – होना – हवइ – हवए

मर – मरना – मरए

**अभ्यास**

## कृदंत – वर्तमान कृदंत

पुंलिंग – न्त, माण – पास+त – पासंतो।
पास+माण+ओ – पासमाणो।
चिंत+न्त – चिंतंतो। चिंत+माण – चिंतमाणो।
जय+न्त – जयंतो। जय+माण – जयमाणो।
सीख+न्त – सीखंतो। सीख+माण – सीखमाणो।

स्त्री. – दह+न्त+आ – दहंता। दहमाण+आ – दहमाणा। कडु+न्त+आ – कडुंता। कडु+माण+आ – कडुमाणा।
छिन्न+न्त+आ – छिन्नंता। छिन्न+माण+आ – छिन्नमाणा। सोह+न्त+आ – सोहंता। सोह+माण+आ – सोहमाणा।

नपुं. – चल+न्त+(–) चलंतं। चल+माण+(–) – चलमाणं। पड+न्त+(–) पडंतं। पड+माण+(–) – पडमाणं।
धाव+न्त+(–) धावंतं। धाव+माण+(–) – धावमाणं। भम+न्त+(–) भमंतं। भम+माण+(–) – भममाणं।

## सम्बन्ध कृदंत – ऊण – करके

(1) दह + ऊण = दहिऊण – जलाकर।

(2) णम + ऊण = णमिऊण – नमनकर।

(3) पेस + ऊण = पेसिऊण – भेजकर।

(4) सेव + ऊण = सेविऊण – सेवन करना।

## हेत्वर्थ कृदंत – उं

(1) चल + उं = चलिउं = चलने के लिए।

(2) कंद + उं = कंदिउं = रोने के लिए, चिल्लाने के लिए।

BSER

(3) पड + उं = पडिउं = गिरने के लिए।

(4) पास + उं = पासिउं = देखने के लिए।

## विधि कृदंत – अव्वं

(1) भणि + अव्वं = भणिअव्वं = कहने योग्य।

(2) सुणि + अव्वं = सुणिअव्वं = सुनने योग्य।

(3) चल + अव्वं = चलिअव्वं = चलने योग्य।

(4) गज्ज + अव्वं = गज्जिअव्वं = गरजने योग्य।

**'अ' प्रत्यय**

(1) 'अ' प्रत्यय का प्रयोग भूतकाल या समाप्ति कार्य के लिए किया जाता है।

(2) इसमें कर्त्ता तृतीया में रखा जाता है। यथा – मए पोत्थआणि पढिआणि।

(3) यह विशेष्य के अनुसार होता है। विशेष्य पुं., स्त्रीलिंग या नपुंसकलिंग हो तो उसी के अनुसार 'अ' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है।

(4) 'अ' प्रत्यय सदैव कर्मवाच्य में होता है।

पुंलिंग : गओ – गया। जयो – जीता। चिंत – चिंतिओ – सोचा गया। दह – दहिओ – जलाया गया। सेव + अ – सेविओ – सेवा किया गया। भण + अ – भणिओ = कहा गया।

स्त्रीं. : पेस+अ+आ – पेसिआ = भेजा ।<br>
णच्च+अ+आ – णच्चिआ = नाचा।<br>
लिह+अ+आ – लिहिआ = लिखा गया।

नपुं. : कील+अ+(–) कीलिअं – खेला गया।<br>
पाल+अ+(–) पालिअं – पाला गया।<br>
इच्छ+अ+(–) इच्छिअं – चाहा गया।

**'अणीअ' प्रत्यय –** चाहिए अर्थ में इसका प्रयोग होता है।

(1) इच्छ+अणीअ = इच्छणीअ = इच्छा करना चाहिए।

(2) कील+अणीअ = कीलणीअ = खेलना चाहिए।

(3) हस+अणीअ = हसणीअ = हसना चाहिए।

(4) पढ+अणीअ = पढणीअ = पढ़ना चाहिए।

**'स्स' प्रत्यय –** भविष्यत् काल में 'स्स' प्रत्यय होता है। इनमें न्त, माण, प्रत्यय जोड़े जाते हैं।

(1) चिंत+स्स+न्त = चिंतिस्संतो = सोचता होगा।

(2) पढ़+स्स+न्त = पढिस्संतो = पढ़ता होगा।

(3) हस+स्स+माण = हसिस्समाणो = हसता होगा।

(4) णच्च+स्स+माण = णच्चिस्समाणो = नाचता होगा।

BSER

**कर्मणि प्रयोग –**

(1) धातुओं में मुख्यतः तीन वाच्य होते हैं – कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य।

(2) भाववाच्य और कर्मवाच्य में मूल क्रियाओं के मध्य में 'इज्ज' प्रत्यय ईअ/ईअ विकरण भी जुड़ते हैं। यथा – हस+इज्ज+इ = हसिज्जइ। हस+ईअ+इ = हसीअइ।

**क. वर्तमानकाल (लट् लकार)**

| **कर्तृवाच्य** | **कर्मवाच्य** |
| --- | --- |
| बालो पोत्थअं पढइ। | बालेण पोत्थअं पढिज्जइ। |
| सुरेसो णयरं गच्छइ। | सुरेसेण णयरं गच्छिज्जइ। |
| चंदणा महावीरं पस्सइ। | चंदणाए महावीरो पस्सिज्जइ। |

**ख. भविष्यत्काल (लृट् लकार)**

बालो पोत्थअं पढिस्सइ।
    बालेण पोत्थअं पढिस्सइ।

सुरेसो णयरं गच्छिस्सइ।
    सुरेसेण णयरं गच्छिस्सइ।

चंदणा महावीरं पस्सिस्सइ।
    चंदणाए महावीरो पस्सिस्सइ।

**ग. विधि/आज्ञा**

बालो पोत्थअं पढउ।
    बालेण पोत्थअं पढिज्जउ।

सुरेसो णयरं गच्छउ।
    सुरेसेण णयरं गच्छिज्जउ।

चंदणा महावीरं पस्सउ।
    चंदणाए महावीरो पस्सिज्जउ।

**घ. भूतकाल**

बालो पोत्थअं पढीअ।
    बालेण पोत्थअं पढिज्जीअ।

सुरेसो णयरं गच्छीअ।
    सुरेसेण णयरं गच्छिज्जीअ।

चंदणा महावीरं पस्सीअ।
    चंदणाए महावीरो पस्सिज्जीअ।

**कर्तृवाच्य से भाववाच्य**

**क. वर्तमान काल**

| **कर्तृवाच्य** | **कर्मवाच्य** |
|---|---|
| बालो हसइ | बालेण हरिज्जइ। |
| सुरेसो हसइ | सुरेसेण हसिज्जइ। |
| चंदणा हसइ | चंदणाए हरिज्जइ। |

**ख. भविष्यत् काल**

| | |
|---|---|
| बालो हसिस्सइ | बालेण हसिस्सइ। |
| सुरेसो हसिस्सइ | सुरेसेण हसिस्सइ। |
| चंदणा हसिस्सइ | चंदणाए हसिस्सइ। |

**ग. विधि / आज्ञा**

| | |
|---|---|
| बालो हसउ | बालेण हसउ। |
| सुरेसो हसउ | सुरेसेण हसउ। |
| चंदणा हसउ | चंदणाए हसउ। |

**घ. भूतकाल**

| | |
|---|---|
| बालो हसीअ | बालेण हसिज्जीअ। |
| सुरेसो हसीअ | सुरेसेण हसिज्जीअ। |
| चंदणा हसीअ | चंदणा हसिज्जीअ। |

**संकेत –** उक्त नियम एकवचन के हैं। इन्हें बहुवचन भी बनाया जा सकता है।

## अभ्यास

**अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न**

(1) चिंतइ किस काल का रूप है ? ( )

(2) चिंतित्था किस काल का रूप है ? ( )

(3) पासीअ का काल बतलाइए। ( )

(4) दहिस्सामि का काल बतलाइए। ( )

(5) उड्डंति का पुरुष बतलाइए। ( )

(6) धावसि का पुरुष बतलाइए। ( )

**वस्तुनिष्ठ प्रश्न**

(क) इसमें मध्यम पुरुष एकवचन कौनसा रूप है ?

(i) भणंति (ii) भणसि

(iii) कीणइ (iv) पालामि ( )

(ख) इसमें भविष्यत्काल का रूप कौन सा है ?

(i) गच्छि (ii) हसउ

(iii) सेविस्सइ (iv) णमंति ( )

(ग) विधि/आज्ञा इनमें से कौन हैं ?

(i) सोहइ (ii) चलंति

(iii) पेससि (iv) णच्चउ ( )

(घ) इसमें भूतकाल का कौनसा रूप है ?

(i) कंदीअ (ii) सीखउ

(iii) छिन्नइ (iv) पडिस्सामि ( )

**वस्तुनिष्ठ की उत्तरमाला –**

(क)–(ii), (ख) – (iii), (ग) – (iv), (घ) – (i)।

**लघुत्तरात्मक प्रश्न**

(1) वर्तमान काल के रूप किसी एक धातु के लिखिए।

(2) भविष्यत् काल के मध्यम पुरुष के रूप किसी एक धातु के लिखिए।

(3) वर्तमानकाल के कृदन्त के प्रत्यय देकर पुंलिंग का प्रयोग दीजिए।

(4) विधि कृदंत का प्रत्यय लिखकर 'चल' में प्रयोग कीजिए।

(5) कर्तृवाच्य किसे कहते हैं ?

(6) कर्मवाच्य किसे कहते हैं ?

(7) भाववाच्य किसे कहते हैं ?

(8) संधि किसे कहते हैं ?

**निम्न क्रियाओं के जोड़े बनाइए –**

| | |
|---|---|
| (i) हसिस्सइ | (i) वर्तमान काल |
| (ii) लिहउ | (ii) भूतकाल |
| (iii) गच्छीअ | (iii) भविष्यत्काल |
| (iv) भणइ | (iv) विधि |

**उत्तरमाला –** (i) – iii, (ii) – iv, (iii) – ii, (iv) – i

BSER

## संधि प्रयोग ज्ञान

वर्णों के निकट आने पर जो परिवर्तन होता है, उसे सन्धि कहते हैं। प्राकृत में मुख्यतः तीन प्रकार की संधियाँ होती हैं – (i) स्वर संधि (ii) व्यंजन संधि, और (iii) अव्यय संधि।

**(i) स्वर संधि –** दो समान स्वरों के मिलने से जो परिवर्तन होता है, वह स्वर संधि कहलाती है। (i) दीर्घ संधि, (ii) गुण संधि, (iii) ह्रस्व–दीर्घ संधि, (iv) संधि निषेध, और (v) स्वर लोप (लुक्) संधि, ये पांच भेद स्वर संधि के भेद हैं।

– **दीर्घ संधि –** सवर्ण दीर्घ संधि। यह समान स्वर होने पर होती है। यथा –

अ+अ = आ जीवाजीवो – जीव+अजीवो
उसहाजिओ – उसह+अजिओ
इ+इ = ई मुणीण मुणि + इण
उ+उ = ऊ, भाणु + उदयो – भाणूदयो

संधि पद का विग्रह – विरहाणल विरहारअ सुधीस

– **गुण संधि –** अवर्ण के पश्चात् उ या उ वर्ण हो तो गुण संधि होती है। यथा –

अ+इ = ए–बास + इसी = वासेसी
अ+ई = ए–दिण + ईस –दिणेस सुर + ईस = सुरेस आ+ई = ए – रमा+ईस – रमेस

अ+अ = ओ – गाम+उवरि – गामोवरि
कसाय + उदयो – कसायोदयो
आ+उ = ओ – रमा+उवचिअ = रमोवचिअ
सास+ऊ = ओ – सास+ऊसास = सासोसास

**संधि पद का विग्रह कीजिए –**

पुण्योदयो सुज्जोदयो दिणेसो जिणेसो महेसो

– **ह्रस्व–दीर्घ संधि –** समास पद में स्थित दीर्घ का ह्रस्व और ह्रस्व का दीर्घ हो जाता है। यथा –
सत्त+वीसा = सत्तावीसा, पइहरो – पईहरो,
लच्छिवई – लच्छीवई (दीर्घ का ह्रस्व), वारीमई (ह्रस्व का दीर्घ) – वारि+मई।

**संधि–पद का विग्रह कीजिए –**

सम्मादिही मिच्छदिही केवलिणाणं जंबुसामी।

**संधि–निषेध –** प्रकृति भाव संधि – प्रायः प्राकृत में संधि नहीं होती है। यथा – कसा उदयो कसाय + उदयो अहोअच्छीयं देवीएएत्थ साहु उसलयो – वणेअउइ।

**लुक् संधि –** प्राकृत में प्रायः स्वर से आगे स्वर हो तो शब्द के स्वर का लोप हो जाता है। यथा –
विज्जा+आलयो = विज्जालयो, जिणालयो – जिण+आलयो, देवालयो – देव+आलयो, सुरिंदो – सुर+इंदो, जिणिंदो – जिण+इंदो, महिंदो – मह+इंदो।

BSER

**संधिपद का विग्रह कीजिए –**

देविंदो धम्मिंदो णीसासूसासो वंसुप्पत्री तहेव

**व्यंजन संधि –** प्राकृत में प्रायः व्यंजनों का परिवर्तन होता है, इसलिए व्यंजन संधि नहीं है।

**अव्यय संधि –** जिसका कोई लिंग एवं वचन नहीं होता है, जो सदैव एक से होते हैं, वे अव्यय हैं।

– पद के पश्चात् 'अ' का प्रायः लोप। यथा – केण वि + केण+अवि। कहं वि – कहं अवि। धणं वि – धणं अवि।

– व्यंजनान्त पद के पश्चात् इति के 'इ' का लोप। यथा – जं ति जं इति। किं ति – किं इति।

– ओ के पश्चात् इति के 'इ' का लोप और त को द्वित्व हो जाता है। यथा – पुरिसो त्ति – पुरिसो इति। देवो त्ति – देवो इति। पुत्तो त्ति – पुत्तो+इति।

**संधि कीजिए –**

जिण+ईसो, मह+ईसो, पुव्व+उदयो, सुर+असरा, देव+आलयो।

**संधि पदों का विग्रह कीजिए –**

महोसही वणोली। जिणिंदो मणुजिंदो किंति जिणोति।

– सर्वनामों में प्रयुक्त एव्व एत्थ अहं आदि के स्वरों का लोप हो जाता है। यथा – अम्हेत्थ अम्हे–एत्थ, अम्हेव्व–अम्हे एव्व, जइहं – जइ+अहं।

## अभ्यास

## संधि प्रयोग ज्ञान

**वस्तुनिष्ठ प्रश्न**

(क) वर्णों के निकट आने पर जो परिवर्तन होता है, उसे क्या कहते हैं ?

(i) समास (ii) तद्धित

(iii) संधि (iv) क्रिया ( )

(ख) प्राकृत में मुख्यतः कितनी संधियाँ होती हैं ?

(i) चार (ii) तीन

(iii) पांच (iv) सात ( )

(ग) इनमें से किसमें दीर्घ संधि है ?

(i) सुरासुर (ii) जीवमजीवं

(iii) जिणेस (iv) महिंद ( )

(घ) इसमें लुक् लोप संधि है ?

(i) भावोदय (ii) गणेस

(iii) जीवाजीवो (iv) महिंद ( )

**उत्तरमाला :**

(क) – (iii), (ख) – (ii), (ग) – (i), (घ) – (iv)



BSER

**अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न**

(i) दीर्घ संधि क्या है ?

(ii) गुण संधि क्या है ?

(iii) ह्रस्व दीर्घ संधि क्या है ?

(iv) अव्यय संधि क्या है ?

**लघुत्तरात्मक प्रश्न**

(i) संधि किसे कहते हैं ?

(ii) संधि के प्राकृत में तीन भेद कौन–कौन हैं ?

(iii) दीर्घ संधि का लक्षण लिखकर उदाहरण दीजिए।

(iv) अव्यय संधि के दो परिवर्तन दीजिए।

**इसमें क्या सही है ? मिलान कीजिए –**

| | |
|---|---|
| (i) सुरासुरा | (i) अव्यय संधि |
| (ii) महिंद | (ii) गुण संधि |
| (iii) महेस | (iii) दीर्घ संधि |
| (iv) पुरिसो ति | (iv) लुक् संधि |

**उत्तरमाला –**

(i) – iii, (ii) – iv, (iii) – ii, (iv) – i.

BSER

# समास प्रयोग ज्ञान

समास का अर्थ है संक्षिप्तिकरण। जब दो या दो से अधिक शब्दों को आपस में मिला दिया जाता है, तब समास होता है।

**समास भेद –** अव्ययी भाव, तत्पुरुष, बहुब्रीहि, कर्मधारय, द्वंद्व और द्विगु, ये छह भेद हैं।

**अव्ययी भाव –** जिसमें अव्यय की प्रधानतः हो, वह अव्ययी भाव समास है। यथा –

**विभक्ति अर्थ** – अप्पम्मि इति – अज्मप्पं

**समीप अर्थ** – उवगुरुं – गुरुणो समीवं, उवदिसं – दिसाए समीवं।

**पश्चात् अर्थ –** अणुजिणं – जिणस्स पच्छा। अणुभोयणं – भोयणस्स पच्छा।

**अभाव अर्थ –** णिम्मोहो – मोहस्स अभावो, णीरागो – रागस्स अभावो।

**नाश अर्थ –** विरागो – विगदस्स रागो – अपावं – पावस्स णासो।

**यथा अर्थ –** अणुरूवो रुवस्स जोग्गो, अणुबमं – उमस्स जोग्गो।

**आनुपूर्ण्य अर्थ –** अणुजेहो – जेहस्स आणुपुव्वेणं।

**योग अर्थ –** सचक्कं चक्केणं जुगवं।

**तत्पुरुष –** जिसमें प्रथम पद विशेषण और दूसरा पद विशेष्य (मुख्य) हो, वहां तत्पुरुष समास होता है। इसमें समान विभक्तियों का प्रयोग होता है।

**प्रथमा तत्पुरुष –** किण्हसप्पो – कणहोसप्पो। सेयवसणएं सेयं वसणं।

**द्वितीया तत्पुरुष –** इसमें सिअ, अतीद, पडिद, गअ, अइअत्थ (अत्यस्त्य) पत्र (प्राप्त) और आवण्ण (आपन्न) शब्द की प्रधानता होती है। किसणसिओ – किसणं सिओ। इंदियातीदो – इंदिया – अतीदो। अग्गिपडिओ – अग्गिं पडिओ। सिवगओ – सिवं गओ मोक्खगओ सुहपत्तो – सुहं पत्तो। मेहाइअत्थो – मेहं अइअत्थो। कहावण्णो – कहं आवण्णो।

**तृतीया तत्पुरुष –** इसमें प्रथम पद तृतीयांत होता है। यथा– किवाजुतो – किवाएजुतो। णिवसंगो – णिवेणसंगो। णेतविहीणो – णेतेहिं विहीणो। रसपुण्णं – रसेण पुण्णं।

**चतुर्थी तत्पुरुष –** इसमें प्रथम पद चतुर्थी का होता है। यथा – मोक्खम्माणं – मोक्खस्स माणं (मोक्ष के लिए ध्यान)। णाणज्झयणं – णाणस्स – अज्झयणं (ज्ञान के लिए अध्ययन)।

**पंचमी तत्पुरुष –** इसमें प्रथम पद पंचमी का होता है। यथा – चोरभयं – चोराओभयं। दंसणभहो – दंसणाओ भहो।

**षष्ठी तत्पुरुष –** इसमें प्रथम पद षष्ठी का होता है। यथा – देवकुमारा – देवस्स कुमारो – (देव का कुमार)।

विज्जठाणं – विज्जाए ठाणं (विद्या का स्थान), जिणिंदो – जिणाणं इंदो। देवधुई – देवस्स धुई। राजपुत्रो – राजस्स पुत्रो (राजा का पुत्र)।

**सप्तमी तत्पुरुष –** इसमें प्रथम पद सप्तमी का होता है। यथा – कलापवीणो – कलास पवीणो (कला में प्रवीण), णेहरतो – णेहे रतो, पुरिसोतमो – पुरिसेसु उतमो। णरसेट्ठो – णरेसुं सेट्ठो (नरों में श्रेष्ठ)।

इसमें प्रायः प्रवीण, रत, उत्तम, चंड, धूर्त, अंतर, पटु, पंडित, कुशल, चपल, निपुण आदि शब्दों का प्रयोग होता है।

**बहुब्रीहि समास –** जब सभी पद किसी अन्य पदार्थ के विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं, तब बहुब्रीहि समास होता है। यथा – चक्कवट्टी – चक्कं हत्थे जस्स सो (चक्रवर्ती), चंदमुही (कन्या), महाबाहू – महंता बाहुणो जस्स सो महाबाहू। पीअंबरो सेयंबरो दिगंबरो चक्कपाणी (नारायण।)

**कर्मधारय समास –** जिसमें दो पदों का आधार समान हो, उसे कर्मधारय समास कहते हैं। यथा – मुहचंदो – मुह चंदोव्व महावीरो गब्भिणी सुक्कपक्खो किण्हपक्खो महाराओ सीओण्हं घणसमो वज्जदेहो।

**द्वन्द समास –** जब दो या दो से अधिक संज्ञाएं आती हैं, तब द्वन्द समास होता है। यथा – जीवाजीवो।

**इतरेतर द्वन्द –** देव–देवी – सुरासुरा, पुण्ण – पावं। पत्र–फल– पुप्पुं सुहदुहं। सामण्ण–विसेसो भेदाभेदो।

**समाहार द्वन्द –** तवसंजमो। णाण–दंसण–चारित–तव–वीरियं। असणं पाण।

**एकशेष द्वन्द –** पिअरा ससुरा जिणा।

**द्विगु समास –** जिस पद में पूर्व पद संख्या वाला और उत्तर पद संज्ञा हो, तब द्विगुसमास होता है। यथा – तिरयणं, चडकसायं, पंचपावं। तिलोयो चडदिसा छद्दव्वं सततच्चं अट्ठकम्मं। णवपयत्थं दसधम्मो।

## अभ्यास

## समास प्रयोग ज्ञान

**वस्तुनिष्ठ प्रश्न**

(क) समास का अर्थ है ?

(i) वर्ण परिवर्तन (ii) संक्षिप्तिकरण
(iii) लुक् होना (iv) प्रकृति ( )

(ख) समास होते हैं ?

(i) पांच (ii) चार
(iii) छह (iv) तीन ( )

(ग) णिम्मोहो में कौनसा समास है ?

(i) तत्पुरुष (ii) बहुब्रीही
(iii) कर्मधारय (iv) अव्ययी भाव ( )

(घ) इस 'णेतविहीणो' में कौनसा समास है ?

(i) तत्पुरुष (ii) द्वन्द
(iii) द्विगु (iv) अव्ययी भाव ( )

(ङ) इसमें अव्ययी भाव समास है ?

(i) दंसणभट्ठो (ii) जीव–अजीवो
(iii) रदणतयं (iv) अणुरुषो ( )

**उत्तरमाला –**

(क) – (ii), (ख) – (iii), (ग) – (iv), (घ) – (i), (ङ) – (iv)

**अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न –**

(i) समास किसे कहते हैं ?

(ii) जिसमें अव्यय की प्रधानता हो उसे कहते हैं ?

(iii) विभक्तियों का प्रयोग किसमें होता है ?

(iv) जिसमें दो पदों का आधार हो उसे क्या कहते हैं ?

**लघुत्तरात्मक प्रश्न –**

(i) बहुब्रीहि समास किसे कहते हैं ? उदाहरण दीजिए।

(ii) कर्मधारय किसे कहते हैं ? उदाहरण दीजिए।

(iii) द्वन्द समास किसे कहते हैं ? उदाहरण दीजिए।

(iv) द्विगु समास किसे कहते हैं ? उदाहरण दीजिए।

**इनका सही मिलान कीजिए –**

| | |
|---|---|
| (i) चंदमुही | (i) कर्मधारय |
| (ii) सुक्कपक्खो | (ii) द्वन्द |
| (iii) सुर–असुर | (iii) बहुब्रीहि |

**समास पहचानिए और उनका नाम लिखिए –**

रायपुत्रो, णाण–दंसणं, सचक्कं, तिगुत्ती छद्दव्वं, हंसवाहिणी, जिदिंदिओ, सुह–दुक्खं।

BSER

# अव्यय–परिचय

**अव्यय –** जो कभी परिवर्तन न हो, जो सदा एक से रहे, वे अव्यय हैं।

– उपसर्ग

– क्रिया विशेषण

– समुच्चय बोधक (Conjunctions)

– मनोविकार सूचक (Interjections)

**उपसर्ग –** जो 'अव्यय' क्रिया से पूर्व आते हों, वे उपसर्ग हैं।

| **उपसर्ग** | **अर्थ** | **उदाहरण** |
|---|---|---|
| अइ | अधिक, बहुलता | अइणिंदा, अइमाण |
| अहि | ऊपर, श्रेष्ठ | अहियार, अहिवइ |
| अणु | पीछे | अणुचर, अणुकरण |
| अहि (अभि) | ओर | अहिव्यणं, अहिमुहं (अभिमुख) |
| अव | दूर | अवमाण (अपमान) |
| उव | निकट | उवासग (उपासक) उवासणा |
| प | अधिक | पकंप, पणाम |
| पडि | ओर | पडिक्कमण, पडिगम (प्रतिगम) |

**क्रिया–विशेषण अव्यय**

| **क्रि.वि.** | **अर्थ** | **प्रयोग** |
|---|---|---|
| अईव (अतीव) | पर्याप्त, बहुत | अईव दुही अत्थि। |
| अओ (अतः) | इसलिए | सो जरेण पीडिओ अओ णो पढइ। |
| अग्गे (अग्रे) | आगे | अग्गे गच्छइ। |
| अण्णहा (अन्यथा) | विपरीत | सव्वण्हू वाणी अण्णहा णो। |
| अज्ज (अद्य) | आज | अज्ज गच्छामि विज्जालयं। |
| अत्थ (अत्र) | यहां | अत्थ राजए मुणी। |
| अविवि (अपि) | भी | तुमं वि आगच्छसि। |
| अंतरेण | बिना | चारित्रं अंतरेण मुती णत्थि। |

BSER

| | | |
|---|---|---|
| अहिओ (आभितः) | चारों ओर | गामं अहिओ वणं अत्थि। |
| एव | ही | तुमं एव पिउ असि। |
| कधं | कैसे ! | कधं चरेस्सए। |
| कुओ (कुतः) | कहां से | कुओ समायासि। |

**अन्य क्रिया विशेषण –** केवलं खु खलु (निश्चय ही), झडिइ (झरिति) (शीघ्र), तओ (ततः–तदनंतर)। तत्थ (तत्र–वहां)। तम्हा (तस्मात्–इसलिए)। ण णो परिओ (परितः – चारों ओर)। पुणो (फिर)। पुरओ (पुरतः आगे)। जत्थ (यत्र–जहां)। अहा (यथा–जैसे)। तहा (तथास–वैसे)। अदा (यतः–जब)। सणिअं सणिअं (शनैः शनैः – धीरे–धीरे)। सदा (हमेशा)। सह (साथ)।

**समुच्चयबोधक** (Conjunctions)

| | | |
|---|---|---|
| अहवा | या वा | किं अहवा णो किं/ जीवो अहवा आदा। |
| चेव | ही | णो रोचए चेव। |
| हि | निश्चय | एगो हि दोसो। |
| च | और | जीवं च अजीवं च। |
| तहा | और | णाणं तहा दंसणं। |

**मणोविकार सूचक अव्यय** (Interjections)

| | |
|---|---|
| आ | आ मिदो सि। आ हओ सि। |
| अहो | अहो देसस्स दोभग्गं। |
| आम | आम णायं। |
| हा | हा पिए। |

**पहचानिए और अव्यय बतलाइए –**

अग्गे अओ अत्थ तत्थ अहुणा (अब) एगआ खु खलु णो च हा इत्यादि।

**इज्ज प्रयोग –**

– भाववाच्य तथा कर्मवाच्य की मूलक्रिया एवं प्रत्ययों के मध्य 'इज्ज' प्रत्यय होता है। यथा – हस+इज्ज+इ = हसिज्जइ। पढ+इज्ज+इ = पढिज्जइ।

## अभ्यास

## अव्यय–परिचय

**वस्तुनिष्ठ प्रश्न**

(i) पडि का अर्थ है ?

(क) ऊपर (ख) ओर

(ग) अधिक (घ) निकट ( )

(ii) अईव का अर्थ है ?

(क) विपरीत (ख) यहां

(ग) आज (घ) पर्याप्त ( )

BSER

(iii) कध का अर्थ है ?

(क) कैसे (ख) कहां से

(ग) चारों ओर (घ) आगे ( )

**उत्तरमाला –**

(i) – (ख), (ii) – (घ), (iii) – (क)।

**अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न –**

(i) अव्यय का एक उपसर्ग दीजिए।

(ii) क्रिया विशेषण का एक अव्यय लिखिए।

(iii) समुच्चय बोधक का एक अव्यय लिखिए।

(iv) मनोविकार सूचक अव्यय का एक शब्द लिखिए।

**लघुत्तरात्मक प्रश्न –**

(i) अव्यय किसे कहते हैं ?

(ii) अव्यय के भेदों में से दो के नाम लिखकर उदाहरण दीजिए।

(iii) मनोविकार सूचक अव्यय का एक प्रयोग दीजिए।

(iv) समुच्चय बोधक का एक वाक्य लिखिए।

BSER

## सर्वनामों का प्रयोग ज्ञान

**सर्वनाम** – जो संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त हों, वे सर्वनाम हैं।

### 'अम्ह' सर्वनाम शब्द

| | **एकवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| प्रथमा | अहं | अम्हे |
| द्वितीया | मं ममं | अम्हे |
| तृतीया | मए मया | अम्हेहि |
| चतुर्थी | मम, मज्झ, अम्ह | अम्हाण, अम्हाणं |
| पंचमी | ममतो, ममाओ | ममाओ, अम्हाहिंतो |
| षष्ठी | मम, मज्झ, अम्ह | अम्हाण, अम्हाणं |
| सप्तमी | अम्हम्मि, ममम्मि | अम्हेसु, अम्हेसुं |

### 'तुम्ह' सर्वनाम शब्द

| | **एकवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| प्रथमा | तुं, तुमं | तुम्ह, तुम्हे |
| द्वितीया | तुम, तुमं, तुं | तुम्ह, तुम्हे |
| तृतीया | तुए, तया, तुमे | तुम्हेहि, तुम्हेहिं |
| चतुर्थी | तुम्ह, तुम्हं | तुम्हाण, तुम्हाणं |
| पंचमी | तुज्झ, तुमाओ | तुम्हाहिंतो, तुम्हासुंतो |
| षष्ठी | तुम्ह, तुम्हं | तुम्हाण, तुम्हाणं |
| सप्तमी | तुम्हम्मि | तुम्हेसु, तुम्हेसुं |

### पुंलिंग 'त' सर्वनाम शब्द

| | **एकवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| प्रथमा | सो | ते |
| द्वितीया | तं | ते |
| तृतीया | तेण, तेणं | तेहि, तेहिं |
| चतुर्थी | तस्स | तण, ताणं, तेसिं |
| पंचमी | ततो, ताओ, तम्हा | ततो, ताओ, ताहिंहो |
| षष्ठी | तस्स | ताण, ताणं, तेसिं |

BSER

| | | |
|---|---|---|
| सप्तमी | तस्सिं, तहिं | तेसु, तेसुं |

**संकेत –** 'त' सर्वनाम की तरह क, ज, सव्व, अण्ण, उहय आदि के रूप बनेंगे।

## पुंलिंग 'क' सर्वनाम शब्द

| | **एकवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| प्रथमा | को | के |
| द्वितीया | कं | के |
| तृतीया | केण, केणं | केहि, केहि |
| चतुर्थी | कस्स | काण, काणं, केसिं |
| पंचमी | कतो, काओ, कम्हा | कतो, काओ, काहिंतो |
| षष्ठी | कस्स | काण, काणं, केसिं |
| सप्तमी | कस्सिं, कहिं | केसु, केसुं |

## पुंलिंग 'ज' सर्वनाम शब्द

| | **एकवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| प्रथमा | जो | जे |
| द्वितीया | जं | जे |
| तृतीया | जेण, जेणं | जेहि, जेहिं |
| चतुर्थी | जस्स | जाण, जाणं, जेसिं |
| पंचमी | जतो, जाओ, जम्हा | जतो, जाओ, जाहिंतो |
| षष्ठी | जस्सं | जाण, जाणं, जेसिं |
| सप्तमी | जस्सिं | जेसु, जेसुं |

## नपुंसकलिंग 'ज' सर्वनाम शब्द

| | **एकवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| प्रथमा | जं | जाइ, जाइं, जाणिं |
| द्वितीया | जं | जाइ, जाइं, जाणिं |
| तृतीया | जेण, जेणं | जेहि, जेहिं |
| चतुर्थी | जस्स | जाण, जाणं, जेसिं |
| पंचमी | जतो, जाओ | जतो, जाओ, जाहिंतो |
| षष्ठी | जस्स | जाण, जाणं, जेसिं |
| सप्तमी | जस्सिं, जहिं | जेसु, जेहां |

BSER

## नपुंसकलिंग 'क' सर्वनाम शब्द

| | **एकवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| प्रथमा | किं, कं | काइ, काइं, काणि |
| द्वितीया | किं, कं | काइ, काइं, काणि |
| तृतीया | केण, केणं | केहि, केहिं |
| चतुर्थी | कस्स | काण, काणं, केसि |
| पंचमी | कतो, काओ | कतो, काओ, काहिंतो |
| षष्ठी | कस्स | काण, काणं, केसिं |
| सप्तमी | कस्सिं, कहिं | केसु, केसुं |

## स्त्रीलिंग 'का' सर्वनाम शब्द

| | **एकवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| प्रथमा | का | काओ, काउ |
| द्वितीया | कं | काओ, काउ |
| तृतीया | काए | काहि, काहिं |
| चतुर्थी | काए | काण, काणं, कासिं |
| पंचमी | काए, कतो | कतो, काहिंतो |
| षष्ठी | काए | काण, काणं, कासिं |
| सप्तमी | काए | कासु, कासुं |

## स्त्रीलिंग 'जा' सर्वनाम शब्द

| | **एकवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| प्रथमा | जा | जाओ, जाउ |
| द्वितीया | जं | जाओ, जाउ |
| तृतीया | जाए | जाहि, जाहिं |
| चतुर्थी | जाए | जाण, जाणं, जासिं |
| पंचमी | जाए, जतो | जातो, जाहिंतो |
| षष्ठी | जाए | जाण, जाणं, जासिं |
| सप्तमी | जाए | जासु, जासुं |

**संकेत –** 'जा' की तरह सण्वा, अण्णा, इमा आदि सर्वनाम शब्दों की तरह रूप चलेंगे।

**पहचानिए और लिंग सहित विभक्ति नाम बतलाइए –**

केसिं, कस्स, जतो, जाओ, जासु, अम्हाण, अम्हेहि।

BSER

## पुंलिंग 'इम' सर्वनाम शब्द

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथमा | इमो, अयं, इणं | इमे, णे |
| द्वितीया | इमं, इणं | इमे, णे |
| तृतीया | इमेण, इमेणं,<br>णेण, णेणं | इमेहि, इमेहिं,<br>णेहि, णेहिं |
| चतुर्थी | इमस्स, अस्स | इमाण, इमाणंसिं |
| पंचमी | अतो, इमाओ | इमाओ, इमाहिंतो |
| षष्ठी | इमस्स, अस्स | इमाण, इमाणंसिं |
| सप्तमी | इमम्मि, अस्सिं, इह | इमेसु, इमेसुं |

## स्त्रीलिंग 'इमा' सर्वनाम शब्द

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथमा | इमा | इमाओ, इमाउ |
| द्वितीया | इमं, इणं | इमाओ, इमाउ |
| तृतीया | इमाए | इमाहि, इमाहिं |
| चतुर्थी | इमाए | इमाण, इमाणं सिं |
| पंचमी | इमतो, इमाए | इमाओ, इमाहिंतो |
| षष्ठी | इमाए | इमाण, इमाणं सिं |
| सप्तमी | इमाए, इमसिं | इमासु, इमासुं |

## नपुंसकलिंग 'इम' सर्वनाम शब्द

| | एकवचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथमा | इमं | इमाइ, इमाइं, इमाणि |
| द्वितीया | इमं | इमाइ, इमाइं, इमाणि |

**संकेत –** 'इम' शब्द के तृतीया से सप्तमी पर्यन्त पुंलिंग शब्द की तरह रूप चलेंगे।

### अभ्यास

### सर्वनाम प्रयोग ज्ञान

**वस्तुनिष्ठ प्रश्न**

(i) तृतीया का प्रयोग रूप सर्वनाम कौनसा है ?

(क) मम (ख) मए

(ग) अम्ह (घ) अम्हे ( )

BSER

(ii) तुमाओ किस विभक्ति का रूप है ?

(क) षष्ठी (ख) सप्तमी

(ग) पंचमी (घ) चतुर्थी ( )

(iii) तेण/तेणं किस विभक्ति का रूप है ?

(क) तृतीया (ख) चतुर्थी

(ग) सप्तमी (घ) प्रथमा ( )

(iv) जं किस विभक्ति का रूप है ?

(क) तृतीया (ख) चतुर्थी

(ग) पंचमी (घ) द्वितीया ( )

**उत्तरमाला –**

(i) – (ख), (ii) – (ग), (iii) – ( ), (iv) – (घ)

**अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न**

(i) का स्त्रीलिंग सर्वनाम का 'काओ' रूप किसमें बनता है ?

(ii) जेसिं किस विभक्ति का रूप है ?

(iii) जतो किस विभक्ति का रूप है ?

(iv) कम्हा किस विभक्ति का रूप है ?

(v) जाइ किस विभक्ति का रूप है ?

**लघुत्तरात्मक प्रश्न –**

(i) 'जा' सर्वनाम स्त्रीलिंग के तृतीया के रूप लिखिए।

(ii) 'क' सर्वनाम नपुंसकलिंग के प्रथमा एवं द्वितीया के रूप लिखिए।

(iii) 'इम' सर्वनाम के षष्ठी में क्या रूप बनेंगे ?

(iv) पंचमी विभक्ति सर्वनाम 'इम' के रूप लिखिए।

BSER

# प्राकृत भाषा का सामान्य परिचय

प्राकृत भाषा की गणना मध्य भारतीय आर्य भाषा में की जाती है और इसका विकास वैदिक, संस्कृति व छान्दस भाषा से माना जाता है। अतः प्राकृत की प्रकृति वैदिक भाषा से मिलती–जुलती है। स्वर भक्ति के प्रयोग प्राकृत व छान्दस दोनों भाषा में समान रूप से पाये जाते हैं। अतः यह मानना उचित व तर्कसंगत प्रतीत होता है कि छान्दस भाषा से प्राकृत की उत्पत्ति हुई, जो उस समय की जनभाषा रही होगी। लौकिक संस्कृत व संस्कृत भाषा भी छान्दस से विकसित हुई है। अतः विकास की दृष्टि से संस्कृत व प्राकृत दोनों सहोदरा है।

प्राचीन भारत की मूल भाषा या बोली का क्या रूप था यह तो स्पष्ट नहीं है पर आर्यों की अपनी एक भाषा थी। उस भाषा पर अन्य जातियों का भी प्रभाव पड़ा, उससे छान्दस भाषा विकसित हुई। इस छान्दस भाषा को विद्वानों ने पद, वाक्य, ध्वनि व अर्थ इन चारों अंगों को विशेष अनुशासनों में आबद्ध कर दिया। फलतः छान्दस का मौलिक विकसित रूप प्राकृत कहलाया। साहित्य निबद्ध प्राकृत का विकास मध्य भारतीय आर्य भाषा से माना जाता है। बुद्ध व महावीर के बाद इसका एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ। शिष्टता के घेरे को तोड़कर इतनी तेजी से यह आगे बढ़ी कि संस्कृत भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकीं। संस्कृत में जनोपयोगी विषयों का विवेचन प्राकृत का ही फल है अतः समय व सीमा की दृष्टि से प्राकृत का विकासकाल मध्यकाल माना जाता है।

छान्दस की उदीच्या बोली और प्राच्या दोनों ही धीरे–धीरे भिन्न प्रकार से विकसित हो रही थीं। अनार्यों का सम्पर्क भी इस परिवर्तन के पीछे काम कर रहा था। भगवान बुद्ध के समय तक संस्कृत और छान्दस में विचारों का आदान–प्रदान एक सीमित वर्ग तक ही रह गया था। स्वयं बुद्ध ने अपने उपदेशों के प्रचार–प्रसार के लिए अपनी मातृ–भाषा को ही आधार बनाया था। इसका परिणाम यही था कि प्राकृतों का विकास हुआ। संस्कृत के समान प्राकृत कोई एक साहित्यिक भाषा नहीं थी, अपितु छान्दस की बोलियों में स्थान–भेद के कारण उत्पन्न विभिन्न भाषाएँ थीं जो साहित्य–सृजन में लगी हुई थीं। साहित्य की प्राचीनता की दृष्टि से मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं को तीन मुख्य वर्गों, पर्वों अथवा अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है। डॉ. चैटर्जी ने इसे चार अवस्थाओं में विभक्त किया। (भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी नामक पुस्तकः चैटर्जी)। किन्तु आगे चल कर स्वयं चैटर्जी ने भी तीन ही वर्ग स्वीकार कर लिये। डॉ. उदयनारायण तिवाड़ी ने इन वर्गों को पर्व की संज्ञा दी है। 500 ई.पू. से 1000 ई. तक भारतीय आर्य भाषा विभिन्न प्राक तों तथा अपभ्रंशों में विकसित होती रही, यही विकास आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में परिणत हो गया। ये तीन अवस्थाएँ या पर्व हैं। इनकी काल गणना डॉ. उदय नारायण तिवाड़ी ने 600 ई. पू. से 1000 ई. तक की है तथा डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने 500 ई. पू. से 1000 ई. तक की है। भाषाओं के विकास में एक शताब्दी का आगे–पीछे विचार होना कोई असंगत नहीं है।

(1) पालि तथा अशोक की धर्म लिपियाँ (500 ई. पू. से 1 ई. पू. तक)

(2) साहित्यिक प्राकृतें (1 ई. से 500 ई. तक)

(3) अपभ्रंश भाषाएँ (500 ई. से 1000 ई. तक)

## प्राकृत शब्द की व्युत्पत्ति

मध्यकालीन भाषा का नाम प्राकृत क्यों पड़ा ? इसके सम्बन्ध में भी विभिन्न मत हैं। कुछ वैयाकरण इसकी व्युत्पत्ति 'प्रकृति' शब्द से मानते हैं। इस शब्द का विवेचन है–'प्रकियते उत्पद्यते यया सा प्रकृतिः' सर्वप्रथम प्राकृत–सर्वस्व के रचयिता चण्ड

ने प्राकृत का लक्षण इस प्रकार बताया कि प्राकृत वह भाषा–विशेष है जिसकी योनि संस्कृत है। प्राकृत भाषा के महान् वैयाकरण हेमचन्द्र ने भी अपने 'प्राकृत शब्दानुशासन' में 'अथ प्राकृतम्' सूत्र की व्याख्या करते हुये लिखा है–''प्रकृतिः संस्कृतम् तत्र भवम् तत आगतम् वा प्राकृतम्'' अर्थात् ''प्राकृत संस्कृत है, उससे उत्पन्न अथवा विकसित भाषा ही प्राकृत है।'' दण्डी ने भी अपने 'काव्यादर्श' में ऐसे ही विचार व्यक्त किये हैं। दण्डी के अनुसार महर्षियों ने संस्कृत को देववाणी कहकर उसकी व्याख्या की। इसी देववाणी से विकसित अथवा इसी के समान शब्दों वाली अनेक प्राकृतों का क्रम है। वाग्भट्ट ने भी प्राकृत को देववाणी संस्कृत से विकसित स्वीकार किया है। लक्ष्मीधर अपनी षड्भाषाचन्द्रिका में लिखते हैं–''**प्रकृते संस्कृतायास्तु विकृतिः प्राकृता मता''**। दशरूपक के टीकाकार धनिक ने प्राकृत की व्याख्या करते हुए कहा है कि ''**प्राकृतैः आगतं प्राकृतम्। प्रकृतिः संस्कृतम्''** यही मत कर्पूरमंजरी के टीकाकार वासुदेव, वाग्भटालंकार के टीकाकार सिंहदेवगणी, प्राकृत शब्द प्रदीपिका के रचयिता नरसिंह का भी है। नमि साधु सामान्य लोगों में व्याकरण के नियमो आदि से रहित सहज वचन व्यापार को प्राकृत का आधार मानते हैं।

उक्त व्युत्पत्तियों की विशेष व्याख्या से जो फलितार्थ प्रस्तुत होता है उसके अनुसार प्राकृत भाषा की उत्पत्ति संस्कृत से नहीं हुई, किन्तु ''प्रकृतिः संस्कृतम् का अर्थ है कि संस्कृत भाषा के द्वारा प्राकृत भाषा को सीखने का यत्न करना। इसी आशय से हेमचन्द्र ने प्राकृत को संस्कृत की योनी कहा है।

## प्राकृत भाषा का उद्‌भव एवं विकास

प्राकृतों का उद्‌भव छान्दस और उसकी बोली के विकसित रूप का ही परिणाम है। देश–भेद के कारण ये प्राक तें भिन्न–भिन्न प्रदेशों में कुछ अन्तर से बोली जाती थीं। कुवलयमाला कहा, राज–प्रश्नीय सूत्र, विपाक सूत्र, ज्ञात सूत्र, जैन–सिद्धान्त आदि ग्रन्थ में 18 प्राकृतों का उल्लेख है, जिन्हें देशी भाषा कहा गया है। कुवलयमाला में एक वृत्तान्त है कि श्रीदत्त ने थोड़े से अन्तर पर अनेक व्यापारियों से आपूरित पण्य–वीथि को देखा, जहाँ पर व्यापारी लोग अपनी–अपनी भाषा में बात कर रहे थे। इस प्रकार श्रीदत्त ने अठारह देशी भाषाएँ बोलने वालों को देखा। इसके अतिरिक्त पारस, खस, बब्बरी आदि बोलने वालों को भी वहाँ देखा।

जैन सूत्रों में जो सूत्र अर्धमागधी में लिखे गये हैं, उनमें अनेक प्रसंग आते हैं कि कोई राजकुमार अठारह भाषाओं का ज्ञाता था या गणिकाएँ अठारह भाषाओं में पारंगत थीं। सूत्र ग्रन्थों की अर्ध मागधी की गणना महाराष्ट्री के साथ की जाती है। डॉ. बाबूराम सक्सेना सूत्र–ग्रन्थों की भाषा को प्राचीन अर्ध–मागधी कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि पालि के समय में ही अध र्ा–मागधी समानान्तर रूप में विकसित होने लगी थी, उसमें सूत्रग्रन्थ लिखे जाने लगे थे। अठारह देशी भाषाओं का उल्लेख यह बताता है कि ये बोलियाँ अवश्य प्रकाश में आ गई थीं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वैदिक संस्कृत–काल से ही देशी भाषाएँ पनप रही थीं जिनमें सर्वप्रथम उदीच्य बोलने वालों ने अपनी बोली के आधार पर संस्कृत का रूप निर्धारित किया। इसके पश्चात् मध्यदेश की बोली विकसित पालि भाषा ने साहित्यिक वेश–भूषा धारण की और इसके साथ ही प्राच्या बोली ने मागधी के नाम से अपनी भूमिका का निर्वाह करना आरंभ कर दिया। इन दोनों प्रदेशों के बीच एक संक्रामक तत्त्वों से निर्मित बीच की बोली थी जो मध्यदेशीय और प्राच्या के तत्वों से मिश्रित थी। इस बोली के विकसित रूप को अर्ध–मागधी नाम दिया गया। जैन–धर्म के प्रचारकों ने इसे अपनी धार्मिक भाषा बनाया। जब मागधी और अर्ध–मागधी साहित्यिक परिनिष्ठित स्वरूप प्राप्त कर चुकी थी, उस समय मध्यदेश में एक अन्य भाषा पूर्ण शक्ति के साथ पनप रही थी, जिसका प्राचीन रूप पालि को कहा जा सकता है। विद्वानों ने उसे शौरसेनी प्राकृत का नाम दिया है। इनके अतिरिक्त प्राकृत वैयाकरणों ने महाराष्ट्री प्राकृत का भी नाम गिनाया है। यह प्राकृत महाराष्ट्र की बोली से विकसित होकर साहित्यिक रूप में आई थी। आधुनिक भाषा वैज्ञानिक महाराष्ट्री प्राकृत को शौरसैनी के उत्तरकालीन रूप का विकास मानते हैं। यह भाषा अपने समय की सर्वाधिक लोक–प्रिय भाषा रही है। प्राकृत वैयाकरणों ने 'प्राकृत' शब्द को महाराष्ट्री का पर्यायवाची ही बना दिया है।

इस विश्लेषण से हम कह सकते हैं कि मध्यकाल में प्राकृत भाषाएँ देश–भेद के अनुसार सात रूपों में प्रचलित थीं–

BSER

## प्राकृत के प्रमुख भेद, विशेषताएँ और सोदाहरण स्पष्टीकरण

1. पालि और अशोक के शिलालेखों की भाषा
2. शौरसैनी प्राकृत
3. मागधी प्राकृत
4. अर्धमागधी प्राकृत
5. महाराष्ट्री प्राकृत
6. पैशाची प्राकृत
7. अपभ्रंश

इन सभी भाषाओं को संस्कृत की छोटी बहन कहा जा सकता है। ये संस्कृत की पुत्रियाँ नहीं हैं। इनका विकास संस्कृत के समान और समानान्तर छान्दस से ही हुआ है। डॉ. चैटर्जी तथा श्याम सुन्दर दास इस मत का पूर्ण समर्थन करते हैं कि वैदिक भाषा से ही प्राकृतों की उत्पत्ति हुई, संस्कृत से नहीं। डॉ. बाबूराम सक्सेना भी यही मत प्रकट करते हैं कि पालि में कुछ लक्षण ऐसे मिलते हैं जिनसे हम यह कह सकते हैं कि इसका विकास उत्तरकालीन संस्कृत की अपेक्षा वैदिक संस्कृत और तत्कालीन बोलियों से हुआ है।

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं का अध्ययन हम तीन भागों में विभक्त करके ही करेंगे–

### 1. पालि और अशोक के शिलालेखों की भाषाएँ

संस्कृत को छोड़कर अन्य समस्त भारतीय भाषाओं का नाम प्रदेश के नाम पर पाया जाता है। प्राकृत भाषा का प्रथम उत्थान पालि और अशोक के शिलालेखों के रूप में हुआ। पालि भाषा का मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

## पालि नामकरण

पालि के नाम पर बहुत बहस की गई है। इसलिए इस नाम के सम्बन्ध में सहज जिज्ञासा स्वाभाविक है। बौद्ध ग्रन्थ 'अभिधनप्पदीपिका' में पालि शब्द की निरुक्ति, तन्ति, बुद्ध–वचन तथा पंक्ति अर्थ बताया गया है जिसका सम्बन्ध पा–रक्षणे धातु से बताया गया है, 'पा पालेति रक्खतीति पालि।' कुछ विद्वान इसी को आधार मानकर 'पालि' शब्द को भाषा के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। विद्वानों में 'पालि' शब्द के प्रयोग और अर्थ को लेकर पर्याप्त मत–भेद हैं। 'पालि' शब्द का पुराना प्रयोग भाषा के अर्थ में नहीं है। चौथी शती में श्रीलंका में दीपवंस नामक ग्रंथ लिखा गया जिसमें सर्वप्रथम 'पालि' शब्द का प्रयोग मिलता है। वहाँ यह शब्द बुद्ध वचन के लिए प्रयुक्त हुआ है। बाद में आचार्य बुद्ध धोष ने भी इस शब्द का प्रयोग बुद्ध के वचनों के अर्थ में ही किया। फिर 'पालि' शब्द का प्रयोग पालि–साहित्य के अर्थ में होने लगा। तब भी 'पालि' शब्द भाषा के अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता था। उस समय भाषा के अर्थ में मगध भाषा या मागधी का प्रयोग किया जाता था। सिंहल के लोग अब भी बुद्ध की वाणी की भाषा को मागधी ही कहते हैं। भाषा के अर्थ में पालि शब्द का प्रयोग अत्याधुनिक है जिसे यूरोप के लोगों ने ही प्रारम्भ किया



BSER

है। प्रारम्भ में अशोक के शिलालेखों के लिए भी 'पालि' शब्द का ही व्यवहार किया जाता था। 'पालि' के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों के विचार इस प्रकार हैं–

(1) पंडित विधुशेखर भट्टाचार्य ने संस्कृत की पंक्ति से पालि का निकास बताया है'–पंक्ति>पंत्ति>पट्टि>पल्लि>पालि। भट्टाचार्य के कथनानुसार पालि शब्द का एक अर्थ अभिधानप्पदीपिका के अनुसार पंक्ति भी होता है। 'तन्ति बुद्धवचनं पंति पालि'। अतः पहले पालि शब्द पंक्ति के अर्थ में प्रयुक्त होता था, बाद में ग्रन्थ की पंक्ति के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। बुद्ध घोष ने पालि शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया है। भिक्षु जगदीश कश्यप ने इस मत का खण्डन किया है।

(2) भिक्षु जगदीश कश्यप विधुशेखर भट्टाचार्य से असहमत होते हुए कहते हैं कि पंक्ति के लिए लिखित ग्रन्थ होना आवश्यक है। त्रिपिटिक की रचना पहली शती ई.पू. में हुई। अतः 500 ई.पू. से 1 ई.पू. तक पालि शब्द का प्रयोग ग्रन्थ के बिना पंक्ति के लिए कैसे हो सकता है? मूल त्रिपिटिक में कहीं भी पालि शब्द का प्रयोग पंक्ति के अर्थ में नहीं हुआ है। पंक्ति के स्थान पर ग्रन्थ के साथ अवश्य 'पालि' जोड़ दिया जाता है। पालि शब्द का अर्थ पंक्ति होता तो उसका प्रयोग सदा बहुवचन में ही होता है, जबकि इसका प्रयोग सदा एकवचन में ही होता है।

भिक्षु जगदीश कश्यप पालि शब्द का विकास 'परियाय', 'पलियाय' शब्द से मानते हैं। इसके पीछे दो तर्क हैं कि परिचय शब्द का अर्थ बुद्ध–वचन होता है। इस अर्थ में अनेक बौद्ध ग्रन्थों में परियाय शब्द का प्रयोग किया गया है। र के स्थान पर ल हो जाना मागधी की विशेषता है। अतः 'पालि' शब्द मागधी भाषा का है। पालि में इसके स्थान पर 'पारि' शब्द भी मिलता है। किन्तु इस पर विश्वास नहीं जमता कि बुद्ध के अनुयायियों ने पालि के 'पारि' शब्द को न अपनाकर मागधी के 'पालि' को क्यों अपनाया ? कश्यप की यह धारणा कि यह परियाय >पलियाय >पालियाय >पालि आदि रूपों में विकसित हुआ है, डॉ. उदयनारायण तिवाड़ी की दृष्टि में उचित व प्रामाणिक हैं।

(3) भिक्षु सिद्धार्थ पालि शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के पाठ शब्द से मानते हैं। इनके अनुसार अनेक वेदपाठी ब्राह्मण भी बौद्ध–धर्म में दीक्षित हुए। वे अपने साथ अनेक वैदिक शब्द भी लेकर आये। 'पाठ' शब्द वेदों के पाठ–स्वाध्याय के लिए प्रयुक्त होता था। इसी अर्थ में बुद्ध–वचनों के पाठ के लिए भी स्वीकार कर लिया गया। संस्कृत की मूर्धन्य ध्वनियाँ पालि भाषा में 'ल' में बदल जाती हैं। अतः पाठ का पाल तथा मिथ्या सादृश्य के आधार पर पालि हो गया। किन्तु यह क्लिष्ट कल्पना मात्र ही लगती है।

(4) एक मत यह है कि वैदिक या संस्कृत की तुलना में यह भाषा पल्लि यानी गाँव की भाषा है। इसी से 'पल्लि' कहलायी।

(5) कुछ विद्धानों का मत है कि प्राकृतों में यह सबसे पुरानी प्राकृत है प्राकृत>पाकट>पाअड>पाअल>पालि। यह व्युत्पत्ति भी खींचतान वाली ही है।

(6) 'पा पालेति रक्खतीति' के अनुसार 'पा' में 'लि' प्रत्यय जोड़कर पालि शब्द बना है।

(7) कौशाम्बी का विचार है कि पाल का अर्थ होता है, रक्षा करना और बुद्ध के उपदेश से सबकी रक्षा होती है। अतः उपदेशों की भाषा पालि हुई।

(8) प्रालेय या प्रालेयक अर्थात् पड़ौसी से पालि की उत्पत्ति के लिए दूर की कौड़ी लगाई गई है।

(9) 'प्रकट' शब्द से भी पालि की उत्पत्ति की संभावना व्यक्त की गई है। यथा>प्रकट>पाअड>पालि।

(10) डॉ. मैक्समूलर ने पाटलिपुत्र की भाषा से 'पालि' की उत्पति का उल्लेख किया है। पाटलि का 'ट' लुप्त हो गया और 'पालि' शब्द रह गया। यह भी सन्तोषजनक नहीं है।

## 'पालि' से तात्पर्य

जिस प्रकार वेदों के लिए संहिता शब्द का प्रयोग किया जाता था, उसी प्रकार प्रारम्भ में त्रिपिटक ग्रन्थों के लिए पालि का प्रयोग होता था। अनेक उदाहरण ऐसे हैं जिनसे ज्ञात होता है कि 'पालि' शब्द का प्रयोग मूल ग्रन्थों के लिए ही हुआ है। कालान्तर में मूल ग्रन्थों की भाषा के लिए 'पालि' की भाषा का इस प्रकार का प्रयोग चलता रहा होगा जो बाद में भाषा का ही परिचायक बन गया होगा।

मूल त्रिपिटिकों की भाषा मागधी है। इन त्रिपिटिकों में जो वचन लिपिबद्ध हैं, उनकी मूल अभिव्यक्ति भगवान बुद्ध ने अपनी मातृ–भाषा में की थी, निश्चय ही मागधी थी। बुद्ध के शिष्यों का आग्रह तथागत के उपदेशों को छन्दोबद्ध करने का रहा था, जिसे टाला नहीं जा सका। मध्य देश के प्रति लोगों में उस समय भी आकर्षण था। बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् मध्य देश की भाषा में बुद्ध के मौखिक प्रवचनों को लिपिबद्ध होना आवश्यक था। अतः उस समय मध्य देश की जो भी बोली या भाषा थी, उसमें बुद्ध–वाणी का संग्रह किया गया। उस भाषा का नाम पालि रख दिया गया। पालि मध्य देश की भाषा का पूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं करती। यह उस समय की भाषाओं की खिचड़ी है।

## पालि भाषा का क्षेत्र एवं आधार

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं में सर्वप्रथम पालि ने परिनिष्ठित रूप धारण किया था। बौद्ध–धर्म के सभी प्रमुख ग्रन्थ इसी भाषा में हैं। बौद्ध–धर्मावलम्बी इस भाषा का उद्गम स्थल मगध–प्रदेश को मानते हैं जो भाषा को किसी भी प्रदेश की भाषा नहीं कहा जा सकता। 'पालि' के क्षेत्र के विषय में विद्वानों की विभिन्न धारणाएँ हैं। डॉ. सरनाम सिंह शर्मा ने इन विद्वानों को छः वर्गों में बाँटकर प्रस्तुत किया है–

प्रथम वर्ग में वे विद्वान हैं जो पालि का सम्बन्ध मागधी से मानते हैं। श्रीलंका के विद्वान तथा मैक्सवेलेजर, जेम्स, जार्ज ग्रियर्सन, श्रीमती डेविड्स आदि का यही मत है कि पालि मगधप्रदेश की बोली पर आधारित है। दूसरा वर्ग उन विद्वानों का है जो पालि भाषा को पूर्व की बोली के अनुवाद की साहित्यिक भाषा मानते हैं जो मध्य देश की बोलियों पर आधारित थी। ये इसे पश्चिमी हिन्दी की पूर्वजा मानते हैं। इनमें सर्वश्री लूडर्स, मिलवाँ लेवी, डॉ. कीथ, प्रो. टर्नर, चैटर्जी आदि विद्वान हैं। तीसरे वर्ग के ओल्डन वर्ग, डॉ. मूलर आदि पालि को कलिंग की बोली पर आधारित मानते हैं। चौथा वर्ग डॉ. स्टेनकोनो तथा आर. ओ. फ्रैंक आदि का है जो पालि को विंध्याचल क्षेत्र की भाषा मानते हैं। पाँचवाँ वर्ग उन विद्वानों का है जो पालि का उद्गम कौशल प्रदेश की बोली को मानते हैं। इनमें, प्रो. रायस डेविस ही प्रमुख हैं। छठे वर्ग में वेस्टरगार्ड और ई. कुट्टन आदि विद्वान हैं जो पालि का उद्गम स्थल उज्जैन प्रदेश को बतलाते हैं।

विभिन्न प्राकृतों से तुलना करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि पालि किसी पूर्वी भाषा पर आधारित नहीं है। यह बुद्ध के जीवन काल की भाषा भी नहीं है। बुद्ध चाहते थे कि लोग अपनी भाषा में उनके उपदेशों को ग्रहण करें। इसलिए भगवान बुद्ध ने विभिन्न प्रादेशिक बोलियों में अपनी बातें प्रकट कीं। लोगों ने भिन्न–भिन्न भाषाओं में बुद्ध के उपदेशों का संग्रह भी किया। तब इन विभिन्न बोलियों में निहित उपदेशों को एक सर्व–सम्मत भाषा में लाने का प्रश्न उपस्थित हुआ होगा।

बौद्ध–भिक्षुओं पर विद्वता की दृष्टि से मध्यप्रदेश के निवासियों का प्रभुत्व था। बौद्ध–भिक्षु प्रायः संस्कृत के पंडित होते थे। अनेक भाषाओं वाले भिक्षु विहारों में एक स्थान पर रहते थे। मध्य देश की भाषा की प्रधानता के साथ विभिन्न बोलियों और भाषाओं में मिश्रण हो रहा था। परस्पर विरोध का भाव व्यक्त होने पर विद्वानों ने उन बोलियों का मिश्रित परिनिष्ठित रूप तैयार करके धर्म–ग्रन्थ उसी मिश्रित बोली में तैयार किये होंगे, जिसे बिहार में रहने वाले सभी भिक्षु अपनी बोली समझें। तब इस नवीन मिश्रित भाषा के नाम की समस्या उठी होगी और इसे 'पालि' नाम से अभिहित किया होगा। जब कोई प्रादेशिक नाम इस भाषा

के लिए नहीं मिला तो उन्होंने 'पालि' अर्थात् 'एक पंक्ति में खड़े रहकर शास्ता के उपदेशों का अनुगमन करने वालों की भाषा, नाम दिया होगा। पालि का अर्थ 'पिटक' भी लें तो भी पिटकों की भाषा को 'पालि' कहना अनुचित नहीं है।

इससे यह स्पष्ट है कि पालि किसी प्रदेश विशेष की भाषा नहीं है। पालि एक मिश्र–भाषा है। जिसमें मध्य देश की बोलियों की प्रवृत्तियों की प्रधानता है। कुछ अंश इसमें प्रादेशिक बोलियों के भी हैं।

## पालि की सामान्य विशेषताएँ

'पालि' प्राकृत की सामान्य विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं–

## ध्वनियाँ :

1. पालि में अधिकाँश वैदिक ध्वनियों का प्रयोग मिलता है। स्वरों में अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ के साथ हस्व ऍ तथा ओ का विकास होता दिखाई देता है।

2. व्यंजनों में क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग, प वर्ग, य, र, ल, व, स, ह तथा वैदिक ध्वनियाँ ल, ल्ह भी मिलती हैं, जब कि ये दोनों ध्वनियाँ संस्कृत में नहीं मिलतीं।

3. ऋ, ऋ, ल, ल , ऐ, औ, श, भा विसर्ग या अघोष ह, जिव्हामूलीय उपध्मानीय से दस ध्वनियाँ लुप्त हो गई थीं।

4. ऋ, ऋ के स्थान पर प्रायः अ, इ या इ या उ मिलते हैं, जैसे–ऋणम् से इणम् ऋषि से इसि, ऋतु से उतु, गष्हम् से गहं।

5. लृ, लृ के स्थान पर ल हो गया तथा ऐ के स्थान पर ए एवं औ के स्थान पर ओ हो गया। ऐरावण>एरावण, औदरिक>ओदरिक।

6. अनुनासिकों में 'ण' ध्वनि पद के आदि में भी मिलती है।

7. स्वरों के बीच के ड्, ढ् प्रायः ल ल्ह हो जाते हैं। षोड़श >सोलह।

8. म् सर्वत्र अनुस्वार हो गया और पदान्त 'न्' 'म' बदल जाता है।

9. ऊ म ध्वनियों में श, भा के स्थान पर केवल स मिलता है।

10. अघोष व्यंजन सघोस हो गये (क>ग, च>ज, थ>ध) तथा स्वर भक्ति, समीकरण, विषमीकरण, विपर्यय आदि की प्रवृत्तियाँ उभरीं।

11. व्यंजनान्त प्रतिपादिक स्वरान्त हो गये।

**रूप–तत्व :**

1. पालि में ध्वनि और रूप तत्कालीन बोलियों से प्रभावित होने लगे।
2. कारक रूप बनाने के लिए पालि भाषा ने छान्दस और संस्कृत के रूपों की विविधता का परित्याग कर दिया।
3. ध्वनि और रूप की दृष्टि से पालि वैदिक भाषा के ही निकट है, यद्यपि शब्द–रूपों की संख्या में पर्याप्त कमी आई।
4. कारकों और लिंगों में छान्दस की भाँति पालि में पर्याप्त मात्रा में व्यत्यय देखा जाता है, जैसे चतुर्थी के स्थान पर भाठी का प्रयोग (ब्राह्मस्स धनं ददाति, में ब्राह्मणाय को बदल दिया गया)। तृतीया के स्थान पर पंचमी का प्रयोग यथा तृतीया और पंचमी में 'मुनिया'। अकारान्त शब्दों के रूपों में एकरूपता नहीं पाई जाती।

BSER

5. लिंग के क्षेत्र में क्षय के चिह्न नहीं मिलते। सामान्यतः तीनों लिंग हैं किन्तु नपुंसक लिंग के रूपों के स्थान पर पुल्लिंग रूपों के प्रयोग देखने को मिलते हैं। यथा—'में निरत मनो' के स्थान पर 'मे निरतो मनो' मिलता है।

6. वचनों में द्विवचन का लोप हो गया। उसके स्थान पर बहु—वचन का प्रयोग होने लगा।

7. व्यंजनान्त प्रतिपादिक समाप्त हो गये और सभी प्रतिपादक स्वरान्त हो गये। इनमें कहीं—कहीं अन्त्य व्यंजन का लोप हो गया। शरत्>शरद।

## धातु रूप :

1. धातुओं के गणों की संख्या दस से घट कर सात रह गई। ये हैं—भ्वादि, रुधादि, दिवादि, स्वादि, क्रयादि, तनादि और चुरादि।

2. धातुओं का प्रयोग आत्मनेपद और परस्मैपद (दो पदों) में किया गया है। किन्तु आत्मनेपद अत्यल्प मात्रा में है। पद—सम्बन्ध ी अव्यवस्था भी है।

3. पालि में लकार संस्कृत और छान्दस के समान नहीं हैं, अपितु भिन्न हैं। उनकी संख्या भी दस से घटकर आठ रह गई—वत्तमाना, पंचमी, सत्तमी, परोक्खा, हीयत्तनी, अज्जतनी, भविस्सनित, कालत्तिपन्ति।

4. धातुओं के रूप तीन पुरुषों और दो वचनों में ही मिलते हैं।

5. पालि में सन्नत, यडन्त यङ लुगन्त तथा णिजन्न रूपों के प्रयोग भी हुए हैं।

6. कष्दन्त रूप भी उपलब्ध होते हैं। पूर्वकालिक क्रिया में छान्दस का ही अनुकरण किया जाता है क्योंकि 'ल्यप्' और 'क्त्वा' प्रत्यय नियम विहीन हैं। छान्दस के 'त्वाय' के स्थान पर 'त्वान' मिलता है, जिसे संस्क त में छोड़ दिया गया था। जैसे—गत्वान।

7. पालि में नाम धातु के रूप भी मिलते हैं।

8. उपसर्गों और नियातों के प्रयोग भी मिलते हैं। पटि, पति, परा, वि, स आदि अनेक उपसर्ग और च, न, वा, मा, हि आदि नियातों का प्रयोग हुआ है।

## पालि—साहित्य

पालि में बुद्ध की वाणी का संग्रह त्रिपिटक—सुत पिटक, विनय पिटक और अभिधम्म पिटक—के नाम से हुआ। फिर त्रिपिटकों पर टीकाएँ अनुपिटक नाम से लिखी गई। फिर इन पिटकों के पृथक—पृथक अंग तैयार किये गये। विनय पिटक में तीन प्रकार के ग्रन्थ हैं। सुत पिटक के पाँच निकाय हैं— दीघ निकाय, संयुत निकाय, खुद्दक निकाय आदि। खुद्दक निकाय का 'धम्मपद' बहुत महत्त्वपूर्ण है। जातक साहित्य भी पालि भाषा की धरोहर है। अनुपटिक अधिकतर सिंहली विद्वानों ने लिखे हैं। इन अनुपिटकों की भाषा वैदिकी के निकट है। इसका रूप गद्य में भी विकसित होकर एकरूपता प्राप्त करता दिखाई देता है। मिलिन्दपन्हो का बुद्धघोष की अट्ठकथा में विकास हुआ। दीपवंश और महावंश नामक पालि ग्रन्थों पर संस्कृत का प्रभाव है।

इन सबको अतिरिक्त पालि में छन्द शास्त्र, व्याकरण, कोश ग्रन्थ लिखे गये। 'कच्चान व्याकरण' पालि का प्राचीन और महत्वपूर्ण व्याकरण है।

## अशोक के शिलालेखों की भाषा

म्राट अशोक द्वारा खुदवाये शिलालेख भारत के प्रत्येक भाग में मिलते हैं। ये शिलालेख मूलतः मागधी में तैयार किये जाते थे फिर जिस प्रदेश में इन्हें लगाना होता था, वहाँ की भाषा में अनुवाद करके खुदवाया जाता था। इन शिलालेखों की भाषा भी

मागधी की अपेक्षा पालि ही है। अशोक ने ब्राह्मी तथा खरोष्ठी लिपि में शिलालेख खुदवाये थे। इनमें बीस स्तम्भ और चट्टानें विभिन्न स्थानों पर प्राप्त हुई हैं और अभी खुदाई में प्राप्त हो रहे हैं।

ध्वन्यात्मक अन्तर और स्थान–भेद को ध्यान में रखकर अशोक के शिलालेखों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है। शाहबाज गढ़ी और मानसेरा के शिलालेख उत्तर–पश्चिमी भाषा के नमूने हैं। गिरनार का शिलालेख दक्षिणी–पश्चिमी जन–भाषा का प्रतीत होता है तथा धोली, जौगा, रामपुरवा, सारनाथ के शिलालेखों पर, उत्तर–पश्चिमी प्राकृत, पश्चिमी प्राकृत, मध्य–पूर्वी प्राकृत तथा पूर्वी प्राकृत, इन चार विभाषाओं का प्रभाव देखते हैं।

अशोक के शिलालेखों पर अंकित भाषा को कई लोग अशोकीय प्राकृत कहते हैं। इसका प्रयोग लाटों पर खुदवाने में हुआ है, अतः कुछ विद्वान् लाट–प्राकृत या लाट बोली भी कहते हैं। विद्वान पिशेल ने इसे लेण (लयन–गुफा) बोली कहा है। किन्तु इसका उचित नाम शिलालेखी प्राकृत ही है। अशोक के शिलालेखों से ईसा पूर्व तीसरी शती की भाषा का ज्ञान होता है। इन शिलालेखों में प्रत्येक क्षेत्र की भाषा भिन्न है। फ्रैंक और गुणे आदि विद्वानों ने शिलालेखी प्राकृत का अध्ययन करके पाया कि इनमें दो बोलियों का प्रयोग है, कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार तीन, चार या पाँच बोलियां इनमें प्रयुक्त हैं।

## शिलालेखी प्राकृत विशेषताएँ

वैदिक भाषा छान्दस में प्रयोगों की स्वतन्त्रता थी। एक ही शब्द के अनेक रूप प्रचलित थे। अनेक प्रत्यय विभिन्न अर्थों के सूचक थे। इससे लगता है कि वेदों की रचना जन–भाषा में हुई थी। वेदों में किसी व्याकरण के नियमों का निर्वाह नहीं है। ऋषि केवल अर्थ बोध करना ही अपना कर्त्तव्य समझते थे। पाणिनी ने इस अव्यवस्था और भाषागत अनेकरूपता को समाप्त करने के लिए संस्कृत व्याकरण की रचना की, किन्तु वैदिकी भाषा जन–भाषा के रूप में स्वतन्त्र रूप में विकसित होती रही। उसकी मध्यदेशीय एवं मागधी बोली के आधार पर प्राकृत बनी। जिस पर संस्कृत की अपेक्षा उन जन–बोलियों का प्रभाव है जो अलग–अलग स्थानों पर विकसित हो रही थीं। अशोक के शिलालेख पालि प्राकृत के निकट हैं यद्यपि विभिन्न प्रदेशों की प्राकृतें उन्हें प्रभावित करती हैं। शिलालेखी प्राकृत की विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं–

1. शिलालेखों पर अंकित प्राकृत की ध्वनियाँ पालि के समान ही हैं। केवल ऊ मों में अन्तर है। पालि में केवल 'स' मिलता है जबकि शिलालेखों में इस दृष्टि से एकरूपता नहीं है। 'श, भा और स' तीनों ऊष्म मिलते हैं। दक्षिण–पश्चिमी भाषा के शिलालेखों में केवल 'स' मिलता है।

2. ध्वनि–विकास की दृष्टि से ध्वनियों का आगम, लोप, समीकरण, व्रिषमीकरण, विपर्यय, तालव्य–भाव, मूर्धन्यीकरण, ह्रस्वीकरण, दीर्घीकरण, घोशीकरण आदि प्रवृत्तियाँ स्वरों और व्यंजनों में दिखाई देती हैं।

3. प्रतिपादिक व्यंजनान्त से हटकर स्वरान्त हो गये।

4. लिंग तीन ही हैं किन्तु वचनों में द्विवचन का प्रयोग नहीं है।

5. शब्द रूपों की संख्या संस्कृत और छान्दस से कम है।

6. क्रिया के दो पदों में आत्मनेपद का प्रयोग शिलालेखों में दिखाई नहीं देता है।

7. श्रेष विशेषताएँ पालि के समान ही हैं।

## 2. साहित्यिक प्राकृत भाषाएँ

### प्राकृतों का उद्‌भव और नामकरण

पाँच–सौ ई.पू. से पहली शती ई.पू. तक पालि तथा अशोक के शिलालेखों की धर्म लिपियाँ साहित्य तथा राज–कार्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना चुकी थीं। उस समय भिन्न–भिन्न क्षेत्रों की बोलियाँ धर्म गुरुओं और साहित्यकारों के सहयोग से विकसित हो रही थीं। ये बोलियाँ ही आगे चलकर प्राकृतों के नाम से विख्यात हुईं। मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा का दूसरा युग पहली शती ई. से पाँचवीं शती ईस्वी तक माना जाता है, तब ये विभिन्न प्राकृत भाषाएँ विकसित होकर साहित्य में प्रयोग हुईं। 200 ई. पू. से 200 ई. तक का काल इस दृष्टि से संक्रान्ति काल है जिस पर पालि तथा शिलालेखी प्राकृत का अभाव है तथा बोलियों से प्राकृतों के विकास के लक्षण भी स्पष्ट होते हैं। इस संक्रान्ति काल की सामग्री को तीन रूपों में देख सकते हैं–(क) अश्वघोष के नाटक (100 ई.), धम्मपद की प्राकृत (200 ई.) और निय प्राकृत (तीसरी सदी)। ये सब प्राकृत दूसरे युग के अन्तर्गत ही सम्मिलित होती हैं।

'प्राकृत' नाम के सम्बन्ध में विभिन्न विचार व्यक्त किये जाते हैं। प्राकृत वैयाकरणों ने मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं की प्रकृति संस्कृत बताई है। इसलिए इस काल की भाषाओं को प्राकृत कहा गया है। क्योंकि ये भाषाएँ किसी न किसी प्रक ति का आधार लेकर विकसित हुई हैं। **'यत् प्रकृत्या जातं तत् प्राकृतम्'** के सिद्धान्त पर इनका नामकरण हुआ है। 'प्राकृत' संज्ञा प्राकृत वैयाकरणों की ही देन है। छान्दस में इन भाषाओं को देशी या अपभ्रंश भाषाओं के नाम से व्यक्त किया गया है। उत्तरकालीन संस्कृत ग्रन्थों में भी इन भाषाओं के लिए 'प्राकृत' शब्द का व्यवहार किया गया है। पिशेल के अनुसार 'प्राक्+कृत पहले की गयी' के आधार पर यह संस्कृत से भी पहले बनी, इसलिए प्राकृत कहलायी। हेमचन्द्र इसे संस्कृत से निकली मानते हैं। नभि साधु के अनुसार प्राकृत वह भाषा है जो सामान्य व्याकरण के नियमों से रहित है। एक भाषा का संस्कार करके उसे संस्कृत नाम दिया गया तथा प्राकृत वह भाषा है जो असंस्कृत थी तथा प्राकृत लोगों के व्यवहार की भाषा होने से प्राकृत कहलायी। वेद और संस्कृत काल की जनभाषा ही प्राकृत रूप में विकसित हुई। पालि काल के बाद यही लोक भाषा हुई।

### संक्रान्तिकालीन प्राकृत भाषायें

भिन्न–भिन्न विद्वानों ने देश–काल के अनुसार प्राकृतों की संख्या भिन्न–भिन्न बताई। इसकी संख्या अठारह तक पहुँच चुकी थी। भाषा–वैज्ञानिक पद्धति के अभाव में परिचय होते हुए भी उस समय के विद्वान् इनका स्वरूप–निर्धारण नहीं कर सके। संक्राति के तीन रूप सामने आते हैं–

**(क) अश्वघोष के नाटकों की भाषा–**(100 ई. के आस–पास) मध्य एशिया में अश्वघोष के नाटकों की दो खण्डित प्रतियाँ मिली हैं जिनका सम्पादन जर्मन विद्वान ल्यूडर्स ने किया है। इनकी भाषा अशोक के शिलालेखों से मिलती–जुलती है। भौगोलिक दृष्टि से इनमें प्राचीन शौरसेनी प्राकृत, मागधी–प्राकृत और अर्ध–मागधी का प्रयोग किया गया है। भाषा संस्कृत से प्रभावित है। संस्कृत नाटकों में प्राकृत के प्रयोग का इनमें सुन्दर उदाहरण है।

**(ख) धम्मपदीय भाषा–**फ्रांसीसी विद्वान दुत्रुइल द रॉ को खोतान में खरोष्ठी लिपि में कुछ लेख (1892 ई.) मिले। ओल्डनबर्ग, सेनार्ट तथा भारतीय विद्वानों ने इन लेखों का उद्धार किया। इन लेखों को 'खरोष्ठी धम्मपद' भी कहा जाता है। इनमें पश्चिमोत्तर प्रदेश की भाषा है।

**(ग) निय प्राकृत**—चीनी तुर्किस्तान के निय—प्रदेश में सन् 1900 ई. से 1914 के बीच कुछ लेख मिले हैं। सन् 1937 ई. में टी. बरो ने इन लेखों का अध्ययन किया और इनकी भाषा को प्राकृत घोषित किया। इनका आधार भारत के पश्चिमी प्रदेश की भाषा रही है। यह भाषा तीसरी सदी की है जो ईरानी, मंगोली और तोखारी से प्रभावित है।

## अन्य प्राकृतें

प्राकृत भाषा के सर्वप्रथम व्याकरणकार वररुचि ने अपने व्याकरण ग्रन्थ **'प्राकृत—प्रकाश'** में चार प्राकृत भाषाएँ बताई हैं—महाराष्ट्री, पैशाची, मागधी और शौरसैनी। इस ग्रन्थ के नौ परिच्छेदों में महाराष्ट्री प्राकृत का और शेष प्राकृतों का एक—एक अध्याय में व्याकरण प्रस्तुत किया गया है। इससे लगता है कि महाराष्ट्री प्राकृत अन्य प्राकृतों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण थी। हेमचन्द्र के अतिरिक्त अन्य वैयाकरणों ने भी वररुचि को ही आधार प्रस्तुत किया है। हेमचन्द ने उक्त चार प्रकार की प्राकृतों के अतिरिक्त तीन प्राकृतों का और व्याकरण प्रस्तुत किया है। **'हेम शब्दानुशासन'** में सात प्राकृत भाषाओं का उल्लेख है—(1) महाराष्ट्री प्राकृत (2) शौरसैनी (3) पैशाची (4) चूलिका—पैशाची (5) मागधी (6) आर्ष या अर्ध मागधी (7) अपभ्रंश।

कुछ अन्य विद्वानों ने अनेक प्राकृतों का नामोल्लेख किया है। डॉ. भोलानाथ तिवाड़ी ने अपने भाषा—विज्ञान ग्रन्थ में इनका विवरण और विवेचन इस प्रकार दिया है—"अन्य प्राकृत व्याकरणों एवं इतर स्रोतों से कुछ और प्राकृत भाषाओं के नाम भी मिलते हैं, जैसे वाल्हीकी, शाकारी, ढक्की, चाण्डाली, आभीरिकी अवंती, दाक्षिणात्या, भूतभाषा तथा गौड़ी आदि। इनमें प्रथम पाँच तो मागधी के ही भौगोलिक या जातीय उपभेद हैं। आभीरिका शौरसैनी का जातीय रूप थी और अवन्ती उज्जैन के पास की, कदाचित् महाराष्ट्री से प्रभावित शौरसैनी थी। दाक्षिणात्या भी शौरसैनी का ही एक रूप है। हेमचन्द्र की चूलिका पैशाची को ही दण्डी ने भूतभाषा कहा है। (गलती से पैशाची का अर्थ पिशाच या भूत समझकर) कुछ लोगों ने लिखा है कि हेमचन्द ने पैशाची को ही 'चूलिका—पैशाची' कहा है, किन्तु वस्तुतः बात ऐसी नहीं है। हेमचन्द्र ने ये दोनों नाम अलग—अलग दिये हैं। दूसरी पहली की ही एक उप—बोली है, गौड़ी का अर्थ है गौड़ देश की। इसका आशय यह है कि यह मागधी का ही नाम है।

इसके अतिरिक्त पश्चिमी प्राकृत, कैकेय प्राकृत, ढक्क या माद्री प्राकृत, नागर प्राकृत, खस प्राकृत आदि की कल्पना भी भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने की है। इसका सीधा अर्थ हम यह ले सकते हैं कि छान्दस के परिनिष्ठित साहित्यिक स्वरूप धारण करने तक बहुत सम्भव है कि समस्त उत्तर भारत में सप्त—सिन्धु प्रदेश से मगध तक अनेक जन—बोलियाँ थोड़े—बहुत अन्तर के साथ विकसित होती रही हैं, जिनका नामोल्लेख मात्र उपलब्ध होता है। जो बोलियाँ साहित्यिक रूप प्राप्त कर चुकीं वे अवश्य प्रकाश में आईं। इनके सम्बन्ध में कुछ भी निष्कर्ष रूप में नहीं कहा जा सकता।

प्राकृतों के साथ 'गाथा' नाम का भी प्रचलन रहा है। गाथा की भाषा संस्कृत और प्राकृतों से प्रभावित है। बौद्धों और जैनों की बहुत सी रचनाएँ गाथा रूप में हैं—जातकमाला, ललित विस्तर, अवदान शतक आदि। मैक्समूलर इसे संस्कृत तथा पालि के बीच की भाषा मानते हैं। कुछ विद्वानों ने पश्चिमी प्राकृत की कल्पना की जो सिंध की भाषा थी तथा जिससे ब्राचड़ अपभ्रंश निकली। इसी से वर्तमान सिंधी भाषा का जन्म हुआ। इसी प्रकार पंजाबी और लहंदा क्षेत्र में भी कोई प्राकृत रही होगी जिसे कुछ विद्वानों ने यह 'केकय प्राकृत' कहा है। टक्क, मप्र, माद्री इसी की शाखाएँ हैं। राजस्थानी, गुजराती दोनों शौरसैनी प्राकृत से प्रभावित हैं किन्तु इनका आधार नागर अपभ्रंश है। पहाड़ी भाषाओं के लिए 'खस अपभ्रंश' की कल्पना की गई। चम्बल और हिमालय के बीच पांचाली प्राकृत का भी उल्लेख मिलता है।

## साहित्यिक प्राकृत

इन दर्जनों प्राकृतों में से भाषा—विज्ञान केवल पाँच प्राकृत भाषाओं को स्वीकार करता है—(1) शौरसेनी (2) मागधी (3) अर्ध मागधी (4) महाराष्ट्री और (5) पैशाची।

## प्राकृत भाषाओं की सामान्य विशेषताएँ

इन पाँचों प्राकृतों की अलग–अलग विशेषताओं की चर्चा बाद में की जाएगी, पहले हम इन समस्त प्राकृत भाषाओं की सामान्य विशेषताओं का उल्लेख करेंगे जो सब में समान रूप से मिलती हैं–

## ध्वनि–तत्व

1. प्राकृत भाषाओं की अधिकतर ध्वनियाँ पालि के निकट हैं।
2. प्राकृत भाषा में ऋ, ऐ, औ एवं अः वर्ण नहीं पाये जाते।
3. प्राकृत भाषा में विसर्ग (:) नहीं होता उसके स्थान पर ओ हो जाता है। जैसे रामः>रामो।
4. इनमें ह्स्व ऍ तथा ओ एवं ल तथा ल्ह का प्रयोग प्रचलित था।
5. ऐ और ऋ तथा लृ श्लुप्त हो गये थे। लिखने में 'ऋ' का प्रयोग था किन्तु ध्वनि समाप्त हो गई थी। 'ऋ' का उच्चारण 'रि' होने लगा था, अथवा उसका विकास 'अ इ उ और ए' में उपलब्ध होता है जैसे–ऋणम्>रिणं, ऋषि>रिसि, तष्णम्>तणं मृतः>म ओ।
6. पालि में केवल 'स' ध्वनि है जबकि प्राकृतों में श, षा, स तीनों ऊष्म ध्वनियाँ हैं। बाद में ष, श में बदलता दिखाई देता है।
7. मागधी में 'र' ध्वनि के स्थान पर 'ल' ध्वनि है। इसका विपर्यय भी मिलता है र का ल और ल का र।
8. आद्य 'य' का ज हो जाता है–यज्ञ>जज्ञ। मागधी में ज का य हो जाता है।
9. आधुनिक काल के संघर्षी व्यंजन ग, ज का प्रयोग आश्चर्यजनक है।
10. 'न' ध्वनि का विकास 'ण' में हुआ। नगरम्>णअर।
11. भाषाओं में ड् और ढ् ध्वनियाँ भी हैं।
12. पालि–काल में ध्वनि–परिवर्तन की लोप, समीकरण, स्वर–भक्ति आदि प्रवृत्तियाँ जारी रहीं। महाराष्ट्री और मागधी में परिवर्तन हुए।
13. स्वरों के बीच का अल्प प्राण लुप्त हो गया और महाप्राण का 'ह' हो गया जैसे शची>सई, सागर>साअर, रिपु>रिउ, मुखम>मुँह, मेखला>मेहला, मेघ>मेहो, राधा>राहा।
14. अपभ्रंश और शौरसेनी प्राकृत में सघोष अल्प प्राण के लोप के पश्चात् 'य' श्रुति का आगम भी विशेषतः दृष्टव्य है–नागरम्>नयरं, मृगांकः>मयको, मदनः>मयणो।
15. विसर्ग के स्थान पर ए, ओ, म का व, स्पर्श घोष का अघोष और अघोष का घोष होने की प्रवृत्ति प्राकृत में है जैसे–मृतः>म ओ, भ्रमर>भँवर, दृष्टम्>दिट्ठम आदि।

BSER

## रूप–तत्व

1. व्यंजनांत शब्द लुप्त होकर स्वरान्त हो गये, राजन्>राआ।

2. शब्दों रूपों में क्षय की प्रवृत्ति जो छान्दस में ही प्रारम्भ हो गई थी, अब स्पष्ट दिखाई देने लगी। पुल्लिंग, कर्ता, बहुवचन और कर्म, बहुवचन के रूप में समान होने लगे। जैसे सव्वे (कर्ता), सब्बे (कर्म)

3. द्विवचन का प्रयोग समाप्त हो गया।

4. मध्यकाल तक संस्कृत की तरह तीनों लिंग मिलते हैं। केवल लिंग व्यत्यय के उदाहरण अवश्य मिलते हैं।

5. पालि की तरह प्राकृत में भी आत्मनेपद का प्रयोग नहीं मिलता।

6. संज्ञा शब्दों के साथ सर्वनामों में भी विभक्ति–प्रत्ययों का प्रयोग होने लगा। जैसे–देवे>देवेम्मि, गुरो>गुरुत्तो।

7. शब्द रूप कम हो रहे थे, इसलिए भाषा सरल होती जा रही थी।

8. भाषा संयोगात्मकता से वियोगात्मकता की ओर तेज गति से बढ़ रही थी। कारक और क्रियाओं का सम्बन्ध व्यक्त करने के लिए क्रियाओं के साथ कारक–व्यय एवं कृदन्त क्रियाओं का प्रयोग भी इस काल में प्रारम्भ हो गया। इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में अनुसर्गों और परसर्गों का विकास हुआ। प्राकृतों में यह विकास विशेष उल्लेखनीय है जो अपभ्रंशों में तो धड़ल्ले के साथ आगे बढ़ा।

9. स्वराघात पालि की तरह था और अर्थ–परिवर्तन भी हो रहा था।

10. द्रविड़ शब्दों के भी तद्भव शब्द बनाये जा रहे थे। देशज शब्दों का विकास और प्रयोग प्राकृतों में खूब हो रहा था। हेमचन्द्र ने इसलिए 'देशी नाम–माला' की रचना की।

## धातु रूप

1. प्राकृतों में वैदिकी तथा संस्कृत के 'लङ्, लिट् तथा लुड' प्रयोग बन्द हो गये थे। 'लेट्' लकार बहुत पहले ही संस्कृत से ही बन्द हो गया था। डॉ. चैटर्जी मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं के काल रूपों और भाव–रूपों का विवेचन करते हुए लिखते हैं–''आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के अधिकांश सूक्ष्म काल तथा रूप धीरे–धीरे नष्ट हो गये और अन्त में द्वितीय म. भा. आ. अवस्था में केवल कर्तरि वर्तमान, एक कर्मणि वर्तमान, एक भविष्यत् (निर्देशक रूप में), एक अनुज्ञार्थ तथा एक विधिलिङ् वर्तमान रूप प्रचलित रहे साथ ही कुछ विभक्ति साधित भूत रूप भी बचे रहे, यथा भूतकाल का निर्देश साधारणतया 'त–इत, (या न) साधित कर्मणि कृदन्त या निष्ठा द्वारा होने लगा। 'लङ्', लुङ्, लिट के स्थान पर म. भा. आ. में भूतकाल भावे या कर्मणि कृदन्त 'गत' लगा कर बनाया जाने लगा।

2. मिथ्या सादृश्य के आधार पर सुबन्त और तिडन्त रूप कम होकर भाषा को सरल बनाने में सहायक हो रहे थे।

इस प्रकार सम्मिलित रूप से प्राकृत भाषाओं में उक्त विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं।

BSER

## प्राकृत भाषाओं की अलग–अलग विशेषताएँ

साहित्यिक प्राकृतों के रूप में भाषा–विज्ञान ने जिन पाँच प्राकृतों को स्वीकार किया है, उनका अलग–अलग परिचय तथा ध्वनिगत एवं रूपगत विशेषताओं का निरूपण निम्न प्रकार प्रस्तुत है–

## (1) शौरसेनी प्राकृत

मध्यप्रदेश में बोली जाने वाली भाषा शौरसेनी प्राकृत कहलायी। मथुरा और शूरसेन प्रदेश के आसपास की स्थानीय बोली से इसका विकास हुआ है। इसका नाम भी शूरसेन प्रदेश के आधार पर शौरसेनी पड़ा। मध्यप्रदेश की भाषा होने के कारण यह परिनिष्ठिता और प्रभावशाली भाषा थी। इस पर उदीच्चा बोली का पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है। साथ ही कुछ विशेषताएँ मागध ी भाषा की भी इसमें हैं। शौरसेनी का प्रयोग प्रायः संस्कृत नाटकों में हीन पात्रों और नारी पात्रों द्वारा किया गया है। कर्पूरमंजरी नाटक और अश्वघोष के नाटकों का गद्य शौरसेनी में ही प्राप्त है। अश्वघोष के तीन नाटकों में से एक प्रकरण रूपक सम्पूर्ण रूप से उपलब्ध है जिसका नाम शारीपुत्र प्रकरण है। लूडर्स महोदय ने इन नाटकों की खोज की थी। इस प्रकरण में गौतम और उनके शिष्यों के अतिरिक्त शेष पात्र प्राकृत कहते हैं किन्तु प्रसिद्ध भाषा–विज्ञ डॉ. बाबूराम सक्सेना ने इसे शौरसेनी प्राकृत ही कहा है। कुछ विद्वान शौरसेनी प्राकृत का उद्‌भव पालि भाषा से मानते हैं और शौरसेनी का विकसित रूप महाराष्ट्री को बताते हैं। इसका प्रयोग दिगम्बर जैनियों के ग्रन्थों में हुआ है। जैन शौरसेनी की भाषा कुछ भिन्न है। अवन्ती और आभीरी इसी के रूप हैं।

## ध्वनिगत–विशेषताएँ

(1) शौरसेनी में पालि की सभी ध्वनियाँ हैं। स्वरों में ऐ, औ 'ऋ' ध्वनियाँ नहीं हैं। व्यंजनों में श, ष, स के स्थान पर केवल स है। न और य के स्थान पर ण और ज मिलता है। जैसे–एषः>एसो, भानवः>भाणओ, यथा>जघा।

(2) शौरसेनी के अनादि में वर्तमान असंयुक्त त तथा थ के द और ध हो जाते हैं। जैसे–गच्छति>गच्छदि, यथा>जघा।

(3) आदि में त, थ हो तो परिवर्तन नहीं होता, तस्य >तस्स।

(4) त और थ संयुक्त होने पर द, ध, नहीं होते, जैसे–शकुन्तले >सउन्तले।

(5) कहीं–कहीं थ का थ ही रह जाता है या ह हो जाता है। कथम्>कहं।

(6) शौरसेनी में द और ध ध्वनियाँ सुरक्षित हैं किन्तु अनेक स्थानों पर इनमें विकार है यथा–वधूः>बहू, नदी>नई।

(7) क्ष के स्थान पर क्ख मिलता है। यथा–इक्षु>इक्खु।

(8) कहीं–कहीं शौरसेनी में ज्ञ के स्थान पर 'ण' मिलता है। सर्वज्ञ>सव्वणो।

## रूपगत विशेषताएँ

1. रूपों की दृष्टि से शौरसेनी का झुकाव संस्कृत की ओर है।

2. शौरसेनी में अदन्त शब्दों पर पंचमी एक वचन 'डसि' के स्थान पर आदो और आदु न होकर केवल दो होता है। यथा–देवादो।

BSER

3. स्त्रीलिंग में 'जस्' (प्रथमा बहुवचन) का 'उत्' आदेश नहीं होता। जैसे प्राकृत–मालाओ, शौरसेनी–माला।

4. नपुंसकलिंग प्रथमा और द्वितीया बहुवचन में जस् और शस् के स्थान पर 'णि' आदेश होता है तथा पूर्व स्वर दीर्घ हो जाता है। यथा–घणाणि, वणाणि।

5. शौरसेनी में केवल परस्मैपद के प्रयोग ही मिलते हैं। आत्मनेपद का लोप–सा ही है।

6. तिङ् प्रत्ययों के आने पर 'भू' धातु 'भो' हो जाती है यथा–भोमि।

7. विधि–रूपों में मागधी, अर्धमागधी की तरह 'एंज' न लगा कर संस्कृत का आधार लिया गया है। जैसे–वर्तेत>वट्टे।

8. शौरसेनी में संस्कृत के कर्तृवाच्य के सूचक 'य' प्रत्यय के स्थान पर 'इअ' हो जाता है। जैसे–गम्यते>गमीअदि।

## (2) मागधी प्राकृत

छान्दस से विकसित प्राच्या बोली का यह साहित्यिक रूप है जो मगध के आसपास की भाषा थी। भगवान बुद्ध ने अपने उपदेशों के लिए इसी को चुना था। वर्तमान अवध से बंगाल तक का क्षेत्र इसी के अन्तर्गत आता है। वररूचि इसे शौरसेनी से ही विकसित मानते हैं। लंका में पालि को भी मागधी कहते हैं। मागधी में कोई स्वतंत्र रचना नहीं मिलती। संस्कृत नाटकों में है। इसे गौड़ी भी कहते हैं। बाहलीकी, ढक्की, चांडाली आदि इसके जातीय रूप हैं। ध्वनि–विकार मागधी प्राकृत में सर्वाधिक हुये हैं।

## ध्वनिगत विशेषताएँ1.

1 असंयुक्त स, ष, व श का 'श' हो जाता है किन्तु संयुक्त होने पर 'स' ही होता है। जैसे–हस्ती>हस्ती>कष्टम्>कस्टं, हंस>हंशे, पुरुष>पुलिशे, सारस>शालश।

2. मागधी में र के स्थान पर ल हो जाता है। राजा>लाजा।

3. इसमें 'स्थ' और 'र्थ' के स्थान पर 'स्त' हो जाता है। जैसे अर्थवती>अस्तवदी, सार्थवाह>शस्तवाहे।

4. ज, द्य और य के स्थान पर मागधी में 'य' हो जाता है। जैसे जनपदः>यणपदे, मद्यम>मय्य, याति>यादि।

5. 'क्ष' के स्थान पर मागधी में 'स्क' मिलता है। यथा–पक्ष>पस्के।

6. 'त' के स्थान पर 'द' होता है। जैसे–गच्छति>गच्छदि।

7. मागधी में 'ट' और 'स' से युक्त ठ (ष्ठ) के स्थान पर 'स्ट' हो जाता है। जैसे–पट्ट>पस्टे, सुष्ठु>शुस्टु।

8. अनादि में 'छ' के स्थान परा 'श्च' का आदेश होता है, गच्छ>गश्च।

9. न्य, ण्य; ज्ञ, जं संयुक्ताक्षरों के स्थान पर 'जं' ध्वनि मिलती है। यथा–अभिमन्यु>अहिमंजु, पुण्याहम्>पुंहं।

10. सभी प्राकृतों के समान मागधी में भी समीकरण की प्रवृत्ति है किन्तु मागधी में यदि पूर्ववर्ती ऊष्म ध्वनि हो तो समीकरण नहीं होता, यथा हस्त>हस्त, शुष्क>शुस्क।

BSER

## रूपगत विशेषताएँ

1. मागधी में कर्ता कारक के प्रत्यय 'अः' के स्थान पर 'ए' मिलता है। जैसे–सः>से, देवः>देव।

2. क्त प्रत्यायान्त शब्दों में प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अः का 'उ' भी होता है। यथा–चलितः>चलिदु।

3. षाष्ठी में 'स्य' के स्थान पर 'अह' का प्रयोग होता है। रामस्य >लामाह।

4. मागधी में षष्ठी का बहुवचन 'आम्' भी विकल्प रूप में 'आह' हो जाता है। जैसे–स्वजनानाम्>शअणाह, अस्माकम्>अम्हाहं।

5. सप्तमी में 'इ' के स्थान पर 'अहि' मिलता है। प्रवहणि>पवहणाहि।

6. इसमें 'अहम् और वयम्' के स्थान पर 'हगे' आदेश होता है।

7. मागधी में 'स्था' धातु के 'तिष्ठ' के स्थान पर 'चिष्ठ' मिलता है। जैसे–चिष्ठदि, चिष्ठदे।

8. मागधी में 'क्त्वा' प्रत्यय को 'दाणि' आदेश होता है। जैसे–कृत्वा आगतः के करिदाणि आअडे।

9. मागधी में 'ज', 'घ' और 'य' के स्थान में य आदेश होता है। जनपद–जणवेद ज के स्थान पर य, व, प के स्थान पर व हुआ है। जानाति–याणादि ज के स्थान पर य, व, ण का त हुआ है।

## (3) अर्ध–मागधी प्राकृत

मागधी और शौरसेनी के बीच का कौशल और बनारस प्रदेश अर्ध–मागधी का क्षेत्र रहा है। इसे पश्चिमी प्राच्या भी कहा जाता है। भगवान महावीर और गौतमबुद्ध की मातृभाषा होने के कारण जैन और बौद्धों की यह साहित्यिक भाषा बनी। बौद्धों ने तो मागधी और फिर पालि को अपनी धर्म भाषा बना लिया। किन्तु जैनियों के लिए यह आर्ष, आर्षी और छान्दस से भी पुरानी आदि भाषा के रूप में निधि बन गई है। अर्ध–मागधी में मागधी और महाराष्ट्री प्राकृत तत्व देखने को मिलते हैं। कुछ प्राकृत वैयाकरण इसे शौरसेनी और मागधी का मिश्रित रूप बताते हैं।

डॉ. मनमोहन घोष ने शोधपूर्वक यह निष्कर्ष निकाला है कि शौरसेनी का विकसित रूप ही महाराष्ट्री है, न कि महाराष्ट्र प्रदेश की कोई भिन्न प्राकृत। अर्धमागधी पर महाराष्ट्री प्राकृत का प्रभाव औपपातिक–सूत्र वृत्तौ तथा भगवती–सूत्रवृत्तौ के अनुसार भी स्पष्ट है। संक्षिप्त में सारे मानक ग्रंथ में तो महाराष्ट्री के लिए प्राकृत शब्द के स्थान पर 'महाराष्ट्री मिश्रार्ध मागधी' लिखा है। मलयगिरि ने मागधी का प्रभाव मानते हुये अर्ध–मागधी का स्वतंत्र रूप से वर्णन किया है।

सर आ. जी. भण्डारक अर्द्धमागधी का उत्पत्ति समय द्वितीय शताब्दी मानते हैं। इनके मतानुसार कोई भी साहित्यिक प्राकृत भाषा ईसा की प्रथम व द्वितीय शताब्दी से पहले की नहीं है। इसका अनुसरण कर डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी ने अपनी पुस्तक में अर्द्धमागधी का समय ईस्वीय तृतीय शताब्दी स्थिर कर दिया है।

**(अ) हार्नले** ने समस्त प्राकृत बोलियों को दो भागों में बाँटा है। एक वर्ग को शोरसेनी प्राकृत व दूसरे वर्ग को मागधी प्राकृत कहा है।

**(ब) ग्रियर्सन** के अनुसार शनैः शनैः ये आपस में मिलीं और इनसे तीसरी प्राकृत उत्पन्न हुई, जिसे अर्द्ध मागधी कहा गया है।



BSER

**(स) मार्कण्डेय** ने इस भाषा के विषय में कहा है कि शौरसेनी के निकट होने के कारण मागधी ही अर्द्धमागधी है।

इससे यह ज्ञात होता है कि अर्ध–मागधी पर कुछ विद्वान् मागधी का, कुछ महाराष्ट्री का और कुछ शौरसेनी का प्रभाव मानते हैं। हम कह सकते हैं कि अर्ध–मागधी ने मागधी और मध्य देश की भाषा से कुछ ग्रहण किया, जिसे जैनाचार्यों ने उच्चतम साहित्य से विभूषित किया। समस्त जैन–धार्मिक साहित्य अर्ध मागधी में लिखा गया है। शौरसेनी के साहित्यिक रूप ग्रहण करने से पूर्व ही अर्ध–मागधी में पर्याप्त ग्रन्थ लिखे जा चुके थे। इसमें गद्य–पद्य दोनों रूपों में साहित्य मिलता है। साहित्यिक नाटकों में अर्ध–मागधी का प्रयोग किया गया है। इसका प्राचीनतम रूप अश्वघोष के नाटकों में मिलता है। साहित्य दर्पणकार ने इसे चरों, सेठों और राजपुत्रों की भाषा बताया है। मुद्राराक्षस और प्रबंध चन्द्रोदय में इसका प्रयोग मिलता है। कुछ विद्वान अशोक के शिलालेखों में भी इसी भाषा का अस्तित्व मानते हैं। जैन–कवियों की महाराष्ट्री और शौरसेनी–भाषा पर भी इसका प्रभाव है।

## ध्वनिगत विशेषताएँ

1. इसके स्वर और व्यंजन मागधी तथा शौरसेनी के समान ही हैं। इसमें श और ष के स्थान पर 'स' मिलता है। जैसे–श्रावकः>सावके।
2. अर्ध–मागधी में दन्त्य ध्वनियाँ मूर्धन्य हो गईं। जैसे–स्थित>टिय, मृतः>मडे, कृतः>कडे।
3. च वर्ग के स्थान पर त वर्ग का प्रयोग मिलता है। जैसे–चिकित्सा>तेइच्छा।
4. अन्य प्राकृतों के दो स्वरों के बीच का स्पर्श लुप्त हो जाता है, किन्तु अर्ध–मागधी में 'य' मिलता है। यथा–सागर>सायर। कृतः>कय।
5. गद्य में इसका मागधी प्रयोग मिलता है। पद्य में शौरसेनी के समान 'अ' का 'ओ' हो जाता है।
6. अर्ध–मागधी में 'र' का 'ल' नहीं होता। जैसे–कला>कला, दारक>दारय।
7. ऋकारान्त धातुओं में अन्त में 'क्त' प्रत्यय के 'त' स्थान पर 'ड' हो जाता है। यथा–मृतः>मड, कृतः>कड।
8. 'क' के स्थान पर 'ग' का आगम होता है। श्रावकः>सावगे।
9. दन्त्य ध्वनियाँ मूर्धन्य हो गयी हैं जैसे स्थित>ठिप, कृत्वा>कट्टु।
10. दो स्वरों के बीच आने वाले असंयुक्त 'च' और 'ज' के स्थान पर 'त्' और 'य' ही होता है। जैसे णारात>नाराच, पावतण>प्रवचन इत्यादि, पूजा>पूता, पूया इत्यादि।

## रूपगत विशेषतायें :

1. कर्त्ता कारक एक वचन में शौरसेनी और महाराष्ट्री के समान अन्त में 'ओ' तथा मागधी के समान 'ए' हो जाता है। जैसे श्रावकः>सावके / सावको।
2. सप्तमी एक वचन में 'स्मिन' के स्थान पर 'अंसि' प्रयोग मिलता है। जैसे–लोकस्मिन>लोगसि / लोयंसि।

BSER

3. कम्म तथा धम्म के तृतीया एक वचन में 'उणा' प्रत्यय का प्रयोग मिलता है। जैसे–कम्मुणा, धम्मुणा।

4. उपसर्गों में कहीं अन्त्य वर्ण तथा कहीं अन्त्य स्वर का लोप देखा जाता है। जैसे–इति>ई, प्रति>पत।

5. 'त्वा' और ल्यप् के स्थान पर अर्ध–मागधी में क्रमशः 'इतु और टटु' का प्रयोग होता है। जैसे श्रुत्वा>सुणित्तु, कृत्वा>कट्टु।

6. डॉ. उदयनारायण तिवाड़ी ने अर्ध–मागधी में पूर्वकालिक क्रिया के लिए 'त्ता' और 'च्या' प्रत्ययों के प्रयोग का उल्लेख किया है।

## (4) महाराष्ट्री प्राकृत

इसका मूल स्थान महाराष्ट्र है। प्रो. सुधीर कुमार गुप्त महोदय ने इसी प्राकृत से वर्तमान मराठी का विकास माना है। कुछ विद्वान इसे पूरे भारत की भाषा मानते हैं। डॉ. मनमोहन घोष इसे शौरसेनी से बाद की और उसी का विकसित रूप मानते हैं। इसका विकास शौरसेन प्रदेश में न होकर उसी प्रकार महाराष्ट्र में हुआ जैसे खड़ी बोली हिन्दी का जन्म तो उत्तर में हुआ किन्तु दक्खणी हिन्दी या रेख्ता के नाम से दक्षिण में विकसित होती रही। तत्कालीन भारत में शौरसेनी के इस विकसित रूप महाराष्ट्री प्राकृत को समस्त भारत की साहित्यिक भाषा बनने का गौरव प्राप्त था। ऐसा मत डॉ. घोष का है। डॉ. सुकुमार सेन भी ऐसा ही मानते हैं। एक प्रकार से यह भाषा शौरसेनी प्राकृत और शौरसेनी अपभ्रंश के बीच की भाषा हो सकती है।

मध्यकाल में महाराष्ट्री प्राकृत अन्य प्राकृतों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी रही है। प्राकृत वैयाकरणों ने महाराष्ट्री को ही आदर्श भाषा मानकर प्राकृत भाषाओं का विवेचन किया है। यही नहीं, समय–समय पर महाराष्ट्री प्राकृत के लिए केवल 'प्राकृत' शब्द का ही प्रयोग किया है तथा अन्य भाषाओं को शौरसेनी, मागधी आदि नामों से प्रकट किया है। नाटकों में महाराष्ट्री प्राकृत का प्रयोग उच्च वर्ग के पात्रों से ही कराया गया है। संस्कृत नाटकों में गद्य के लिए शौरसेनी प्राकृत और पद्य के लिए महाराष्ट्री प्राकृत का प्रयोग हुआ है। अन्य भाषाओं में स्वतंत्र साहित्य का अभाव है जबकि महाराष्ट्री में अपना स्वतंत्र साहित्य है। गाहा सतसई (हाल, रावण, अवरसेन) बजजालग्ग (जय बल्लभ) तथा अन्य अमर कृतियाँ इसी प्राकृत में हैं। इस भाषा में इसी का प्रयोग किया गया है। पद्य के साथ इसमें गद्य भी मिलता है। श्वेताम्बर जैनों ने इस भाषा में नीतिकाव्य, खण्डकाव्य, तथा महाकाव्य रचे गये हैं। कालिदास और हर्ष के नाटकों में, गीतों से धार्मिक गद्य–ग्रन्थों की रचना की, जिसे विद्वान याकोबी ने जैन–महाराष्ट्री की संज्ञा दी है। इसमें कुछ बौद्ध ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं।

अर्द्धमागधी के आगम ग्रन्थों के अतिरिक्त चारित्र, कथा, दर्शन, तर्क, ज्योतिष, भूगोल आदि विषयक प्राकृत का विशाल साहित्य है। इसमें महाराष्ट्री के बहुत लक्षण पाये जाते हैं, फिर भी अर्द्धमागधी का बहुत कुछ प्रभाव देखा जाता है।

महाराष्ट्री के कतिपय ग्रन्थ प्राचीन है। यह द्वितीय स्तर के प्रथम युग के प्राकृतों में स्थान पा सकती है। पयन्ना ग्रन्थ, निर्युक्तियाँ, पउमचरिउ, उपदेशमाला ग्रन्थ प्रथम युग की जैन महाराष्ट्री के उदाहरण हैं।

आगम ग्रन्थों पर रचे गये बृहत्कल्पभाष्य, व्यवहारसूत्रभाष्य, विशेषावश्यक भाष्य एवं निशीथ चूर्णी में इस भाषा का प्रयोग हुआ है, समराइच्चकहा, कुवलयमाला, वसुदेवहिण्डी, पउमचरिउ में भी इसी भाषा का प्रयोग है।

संस्कृत को महाराष्ट्री प्राकृत की प्रकृति मानकर वैयाकरणों ने इसकी निम्नलिखित विशेषताएँ बताई हैं–

BSER

## ध्वनिगत विशेषताएँ

1. शौरसेनी प्राकृत की समस्त स्वर और व्यंजन ध्वनियाँ इसमें प्राप्त हैं।
2. स्वर मध्यस्थ तथा असंयुक्त अल्पप्राण अघोष, अल्पप्राण सघोष (क, त, प, ग, द, ब) तथा 'य' का इसमें लोप हो जाता है। यथा लोकः>लोओ, मुकुलम्>मउलो, शची>सई, सूची>सूई, मदन>मऊणों, मृगांकः>मअंको, सागरः>पाअर आदि।
3. महाराष्ट्री प्राकत में महाप्राण स्पर्श इसी प्रकार स्वरों के मध्य में हो, अनादि हो तथा असंयुक्त हो तो वह 'ह' हो जाता है। जैसे–मखः>महो, मुखम्>मुह, नाथः>नाहो, गाथा>गाहा, मेघः>मेहो, सभा>साहा, वधिर>बहिरो, शफरी>सहरी।
4. 'क' के स्थान पर अनेक स्थान पर 'ग' होता है।
5. महाराष्ट्री प्राकृत में स्वर मध्यस्थ ट, ठ, ड क्रमशः ड, ढ, ल हो जाते हैं। जैसे–भटः>भडा, मठः>मढो, गरूड़ः>गरूलो।
6. लुप्त व्यंजनों के स्थान पर 'य्' होता है।
7. 'स' पर अनुस्वार हो और उसके आगे 'ह' हो तो ह का घ हो जाता है। जैसे–सिंह>सिंघो, संहार>संघारो।
8. प, ब के स्थान पर महाराष्ट्री में 'ब' हो जाता है। जैसे–शपथः>सवहो, शापः>सावो, अलाबू>अलावू।
9. महाराष्ट्री में ऋ के स्थान पर 'अ, इ, उ' तीनों मिलते हैं।, जैसे–घृतम्>घअं, कृपा>किवा, ऋतुः>उदु।
10. ऊष्म श, स का इसमें 'ह' हो जाता है। यथा–पाषाण>पाहाण।
11. शब्दों के आदि व मध्य में 'ण' की जगह 'न' अर्धमागधी की तरह होता है।

## रूपगत विशेषतायें :

1. महाराष्ट्री प्राकृत में लिंग तथा वचन दो हैं। कारकों में चतुर्थी के अतिरिक्त सभी का प्रयोग होता है। चतुर्थी के स्थान पर षष्ठी का प्रयोग मिलता है।
2. प्रथमा विभक्ति में एक वचन 'ओ' मिलता है। यथा–देवनो, नभो।
3. अपादान एक वचन में 'अहि' विभक्ति प्रत्यय का विकास महाराष्ट्री प्राकृत की मौलिक विशेषता है। यथा–दुरात्>दुराहि, भर्तुः>भत्ताराहि।
4. अधिकरण कारक के एक वचन के रूप 'स्मि' अथवा 'ए' विभक्ति प्रत्यय से बनते हैं। यथा–देवे>देवेम्मि, गिरौ>गिरिम्मि, भर्तरि>भात्तारे।
5. आत्मन् का विकास शौरसेनी में 'अत्ता' के रूप में हुआ किन्तु महाराष्ट्री में 'अप्पा' के रूप में हुआ।
6. महाराष्ट्री में धातुओं का गणभेद नहीं हैं। अदन्त धातुओं के अतिरिक्त शेष धातुओं में आत्मनेपद–परस्मैपद का भेद नहीं है।
7. 'कृ' धातु रूपों पर सीधा छान्दस का प्रभाव दिखाई देता है। कृणोति>कुणई (संस्कृत–करोति)
8. कर्मवाच्य में शौरसेनी में जहाँ 'ए' मिलता है, महाराष्ट्री में 'इज्ज' मिलता है। गम्यते>गमिज्जइ।
9. पूर्वकालिक क्रिया बनाने के लिए 'क्त्वा' के स्थान पर 'ऊण' प्रत्यय लगाया जाता है। जैसे–पृष्ट्वा>पुच्छिऊण, कृत्वा>काऊण।
10. 'इदमर्थ' में प्रयुक्त प्रत्ययों के स्थान पर महाराष्ट्री में 'केर' शब्द का प्रयोग मिलता है। युष्मदीयः>तुम्हकेरो।

BSER

## (5) पैशाची प्राकृत :

यह मूलतः किस क्षेत्र की भाषा थी, विद्वानों में इस सम्बन्ध में मतभेद हैं। प्राचीन संस्कृत साहित्य में पिशाच–प्रदेश का अनेक बार उल्लेख हुआ है। पैशाचिका, पैशाचिकी, ग्राम्य भाषा, भूत–भाषा, भूतवचन आदि इसके ही नाम हैं। महाभारत में पिशाच जाति का वर्णन है। **ग्रियर्सन** ने कश्मीर प्रदेश में बोली जाने वाली प्राचीन भाषा का रूप माना है जो दरद भाषाओं से प्रभावित है। **राजशेखर** ने 'काव्य–मीमांसा' में मरुभूमि, ढक्क और भादानक प्रदेश को पैशाची भाषा–भाषी बताया है। प्राचीन आचार्यों ने इसे भूतभाषा कहा। **हार्नली** ने द्रविड़ों द्वारा प्रयुक्त प्राकृत को पैशाची माना है। **पुरुषोत्तम** देव ने प्राकृतानुशासन में संस्कृत और शौरसेनी का विकृत रूप ही इसे बताया है। **वररुचि** ने इसे संस्कृत पर आधारित घोषित किया है जिसमें साहित्य नहीं के बराबर है। **हम्मीर मदन** और कुछ नाटकों में कुछ पात्र इसका प्रयोग करते हैं। **हेमचन्द्र** ने 'चूलिका–पैशाची' का ही उल्लेख किया है। **मार्कण्डेय** ने इसके तीन भेद माने हैं–कैकय, पांचाल और शौरसेनी। 'प्राकृत सर्वस्व' में देश काल के अनुसार पैशाची प्राकृत के ग्यारह भेद स्वीकार किये गये हैं। **लेसेन** ने मागध, ब्राचड और पौशाचिकी तीन भेद बताये हैं। अब तक यह भी सम्भावना है कि इस भाषा में साहित्य की सम्पन्नता रही होगी तथा इसकी अनेक विभाषाएँ भी होंगी, आज इसका साहित्य उपलब्ध नहीं है। अतः कुछ भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। विद्वानों का अनुमान है कि संस्कृत में अनूदित गुणाढ्य की 'वृहत् कथा मंजरी' मूलतः पैशाची भाषा में ही लिखी गई थी जो आज उपलब्ध नहीं है।

## ध्वनिगत विशेषताएँ :

1. दो स्वरों के मध्य आने वाले सघोष स्पर्श इसमें अघोष हो गये। यथा गगन>गकन, मेघः>मेखो, राजा>राचा, माधव>माथवो।
2. पैशाची में 'ल' के स्थान पर 'र' और 'र' के स्थान पर 'ल' मिलता है–रुद्र>लुद्द, कुमार>कुमाल।
3. संयुक्त व्यंजनों को स्वर भक्ति के कारण सस्वर करने की प्रवृत्ति इस प्राकृत में है। यथा–स्नानम्>सनानं, स्नेहः>सनेहो, कष्टं>कसट।
4. पैशाची में 'ल' के स्थान पर ल का आदेश होता है। यह बात प्राकृत व्याकरण में कही गई है। यथा–कमलम्>कमल।
5. इसमें 'श', 'ष' के स्थान पर 'स' या कहीं 'श' मिलता है। यथा–शोभते >सोभति, कष्टम्>कसटं, शशि>शशि, विषयः >विसयो।
6. पैशाची में 'ण' के स्थान पर 'न' हो जाता है। गुणगणः>गुनगनो।

## रूपगत विशेषतायें :

1. पैशाची प्राकृत में अकारान्त शब्दों के साथ पंचमी एक–वचन के 'ड सि' के स्थान पर 'आतो' और 'आतु' का आदेश होता है। यथा तुमातो, तुमातु (त्वत) ममातो>ममातु (मत्)।
2. इसमें 'तेन' और 'अनेन' दोनों के स्थान पर केवल 'नेन' मिलता है तथा स्त्रीलिंग में 'नाए' मिलता है।
3. पैशाची में कर्मवाच्य में 'इय्य' का आदेश होता है। यथा–रम्यते>रमिय्यते, पठ्यते>पठिय्यते।
4. इस प्राकृत में 'क्त्वा' के स्थान पर 'तून' हो जाता है। जैसे–गत्वा>गन्तूनं, चलित्वा>चलितूनं।
5. भविष्यत् काल में 'रिस' का आदेश न होकर 'एय्य' का प्रयोग किया जाता है। यथा–भविष्यति>हुवेय्य।
6. 'ज्ञ', 'न्य', व 'ण्य' के स्थान पर णं होता है, जैसे प्रज्ञा>पणां, पुण्य>पुंणं।

BSER

7. 'त' व 'द' के स्थान पर 'त' ही होता है जैसे शत>सत, मदन>मतन, देव>तेय।

8. शौरसेनी के 'दि' व 'दे' प्रत्ययों की जगह ति व ते होता है। जैसे रमति>रमते।

## 3. अपभ्रंश (500 ई. से 1000 ई. तक)

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा का अन्तिम रूप अपभ्रंश है। इस भाषा का विकास प्राकृत काल की बोलचाल की भाषा से ही हुआ है। यह प्राकृत और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के बीच की कड़ी मात्र है। इसके अन्य नाम भी हैं, जैसे ग्रामीण भाषा, देशी, देशभाषा, आभीरादि, अपभ्रंश, अपहंस, अवहत्य, अवहट्ठ आदि। अपभ्रंश का अर्थ होता है, बिगड़ा, भ्रष्ट या गिरा हुआ। 500 ई. से 1000 ई. तक की मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा के लिए अपभ्रंश शब्द का प्रयोग किया गया है।

## 'अपभ्रंश' नाम और समय

अपभ्रंश शब्द के दो अर्थ होते हैं। एक तो संस्कृत से विकृत तद्भव शब्दावली और दूसरा भाषा–विशेष के अर्थ में। तद्भव शब्दों के लिए इसका सर्वप्रथम उल्लेख **महाभाष्यकार पतंजलि** ने दूसरी शताब्दी ई.पू. में किया था। तत्सम शब्दों के विकृत रूपों को पतंजलि ने अपभ्रंश कहा है। छठी सदी में भामाह के 'काव्यालंकार' और **चंड** के 'प्राकृत लक्षणम्' में अपभ्रंश शब्द का भाषा के अर्थ में प्रयोग किया गया है। भामाह ने भाषाओं की गणना करते समय संस्कृत और प्राकृत के पश्चात् अपभ्रंश का उल्लेख किया है। **चण्ड** ने उसके 'रेफ' सम्बद्ध लक्षणों को प्रकट किया है। इन दोनों महानुभावों ने केवल संकेत मात्र दिया है, विस्तार से कुछ नहीं कहा। इन दोनों से भी पहले तीसरी शताब्दी में **भरत मुनि** ने अपभ्रंश भाषा का सांकेतिक अर्थ में सर्वप्रथम प्रयोग किया है। भरतमुनि ने जिस 'उकार बहुला' भाषा का उल्लेख किया है, वह अपभ्रंश ही है। उन्होंने इसे अपभ्रंश नाम से नहीं पुकारा। इससे यह निष्कर्ष तो निकाला ही जा सकता है कि भरत मुनि के समय में ही अपभ्रंश भाषा प्रकाश में आ चुकी थी, पर उसका नामकरण नहीं हुआ था। इसे हीन और असभ्य तथा वनवासी लोगों की भाषा समझा जाता था, किन्तु नाटकों में उसका प्रयोग होने लगा था। यह भरत मुनि की 'उकार बहुला' भाषा आभीरादि लोगों की ही भाषा थी।

सातवीं शती में **दण्डी** ने अपभ्रंश का उल्लेख किया और उसे 'आभीरादि गिरः' कहा। यह विशेषण भरत मुनि के 'शकाराभीर' आदि से भिन्न नहीं है। **डॉ. नामवर सिंह** ने भाषा के अर्थ में अपभ्रंश का प्रयोग छठी शताब्दी से स्वीकार किया है। सत्य तो यह है कि भरत मुनि ने बिना नाम लिये अपभ्रंश के 'उकार बहुला' लक्षणों को तीसरी शताब्दी में ही प्रकट कर दिया था। हो सकता है, उस समय की किसी बोली ने भरत के समय साहित्यिक परिनिष्ठित रूप धारण न किया हो। अपभ्रंश भाषा का सर्वप्रथम लिखित रूप **कालिदास** के 'विक्रमोर्वशीय' नाटक के चतुर्थ अंक में मिलता है। छठी सदी और सातवीं सदी तक अपभ्रंश एक महत्वपूर्ण और समृद्ध भाषा बन चुकी थी। इस भाषा पर अधिकार प्राप्त करना लोग गौरव की वस्तु समझते थे। **राजा धरसेन** ने एक ताम्र पत्र में अपने पिता को संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषा में निपुण बताया है। छठी शताब्दी से लेकर बारहवीं–तेरहवीं शताब्दी तक अपभ्रंश भारत की एकमात्र साहित्यिक भाषा के रूप में विद्वानों के कण्ठों की शोभा बनी रही। हाँ, यह सही है कि बोलचाल की भाषा के रूप में इसका प्रयोग 1000 ई. के आसपास ही समाप्त हो गया था। हेमचन्द्र जब अपभ्रंश का व्याकरण लिख रहे थे, तब यह भाषा अपने पूर्ण उत्कर्ष पर थी। अपभ्रंश भाषा में **रइधू** का 'करकंड चरिउ', **धमेंसुरि** का 'जम्बू स्वामी रासा', **पुष्पदन्त** का 'आदि पुराण', **रामसिंह** का 'पाहुड दोहा', **स्वयंभू** का 'पउम चरिउ' और **धनपाल** का 'भविसयत्त कहा' आदि प्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना की गई, जो आज उपलब्ध हैं।

## अपभ्रंश का विकास और इसके भेद

अपभ्रंश भाषा की प्रारम्भिक विशेषताएँ पश्चिमोत्तर प्रदेशों में प्रकट हुईं। **प्रो. कीथ** ने इसे आभीरों और गूजरों की भाषा बताया है। **डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी** अपभ्रंश को मध्यप्रदेश की भाषा मानते हैं। **डॉ. बाबूराम सक्सेना** भी मध्य–प्रदेश या शौरसेनी से उत्पन्न ही इसे स्वीकार करते हैं।

अपभ्रंश के भेद भी विवादास्पद हैं। **'विष्णु धर्मोत्तर'** में अपभ्रंश के अनन्त भेदों का उल्लेख है। **नमि साधु** ने इसके तीन भेद स्वीकार किये हैं–उपनगर, आभीर और ग्राम्य। **मार्कण्डेय** ने भी तीन ही भेद स्वीकार किये हैं किन्तु नभि साधु से भिन्न। मार्कण्डेय ने नागर, उपनागर और ब्राचड भेद मानते हुए भी अपने 'प्राकृत सर्वस्व' ग्रन्थ में यह भी कहा कि सूक्ष्म अन्तर से विद्वान इसके सत्ताईस भेद मानते हैं। इन 27 अपभ्रंशों में ब्राचड, लाट, वैदर्भ, उपनागर, नागर बार्बर, अवन्त्य, मागध, पाँचाल, ढक्क, मालव, कैकय, गौड़, औढी, वैवपश्चात्य, पाण्डय, कौन्तल, सैंहल, कालिंग, प्राच्य, कार्णाट, काँच्य, द्राविड, गौजर, आभीर, मध्यदेशीय और वैताल सम्मिलित हैं। **मार्कण्डेय** ने यह भी स्वीकार किया था कि ब्राचड अपभ्रंश सिंध की, नगार गुजरात की और उपनागर मिश्रित भाषा है। मार्कण्डेय से पूर्व आठवीं शती में **उद्योतनाचार्य** ने अपनी 'कुवलयमाला कहा' में अपभ्रंश की बोलियों के आधार पर उनके 18 भेद बताये थे। ये हैं–गोल्ल, मध्यदेशीय, मागध, अन्तर्वेदी कीर, ढक्क, सिंध, मरु, गुर्जर, लाट, मालव, कार्णाटक, तथिक, कौसल, महाराष्ट्र, आन्ध्र, खस, वब्बराचिक। छठी सदी तक अपभ्रंश ने काव्यभाषा का पद ग्रहण कर लिया था और हेमचन्द्र तक आते–आते यह पूर्ण परिनिष्ठित हो चुकी थी और यह शिष्टों की भाषा हो चुकी थी, उस समय भारत में विचारों के आदान–प्रदान की एक ही सार्वजनिक भाषा मानना उपयुक्त नहीं होगा, जिसका व्याकरण हेमचन्द्र ने लिखा अपितु अपभ्रंश की अनेक बोलियाँ उस समय प्रचलित थीं। इन्हीं विभिन्न बोलियों से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकास हुआ है।

**श्री पुरुषोत्तम** देव के प्राकृतानुशासन में वैदर्भी, लाटी, औड़ी, कैकेय, गौड़ी और ब्राचड अपभ्रंशों का उल्लेख है, **याकोबी** ने ''सनतकुमार चरिउ'' के आधार पर अपभ्रंश के चार भेद किये हैं–पूर्वी, पश्चिमी, दक्षिणी और उत्तरी। **डॉ. तगारे** ने उत्तरी अपभ्रंश को निकाल कर तीन भेद किये हैं। **डॉ. नामवर सिंह** ने दक्षिणी भेद को व्यर्थ मानकर अपभ्रंश के केवल दो ही भेद बताये हैं।

## निष्कर्ष

अपभ्रंश में विपुल साहित्य प्राप्त है जो परिनिष्ठित भाषा में है। स्थान भेद के कारण इसके स्थानीय रूपों का विकास हुआ है। प्राकृत काल में जो बोलियाँ जनता की बोलचाल में काम आती थीं, वे अपभ्रंश काल में और भी स्पष्ट होने लगी थीं। यही प्रवृत्ति आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के रूप में सामने आई। सन् 1400–1500 के आसपास उत्तर भारत में इसके 13 रूप प्रचलित थे। पंजाबी, लहँदा, सिंधी राजस्थानी, गुजराती, मराठी, खड़ी बोली, ब्रज, अवधी, छत्तीसगढ़ी, पहाड़ी, भोजपुरी, मगही, मैथिली, उड़िया, असमी, बंगाली आदि आधुनिक भाषाएँ उभर रही थीं। इससे स्पष्ट है कि **नामवरसिंह** का मत अनुपयुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि प्राकृत में 5 साहित्यिक प्राकृतें हैं और आधुनिक आर्य भाषाएँ सत्रह या तेरह हैं। इन पाँच और तेरह को जोड़ने वाली कड़ियाँ दो नहीं हो सकतीं। संस्कृतकाल में उदीच्य, मध्यदेशीय और प्राच्य तीन रूप बोलियों के थे जो बढ़ ही सकते थे, कम नहीं हो सकते थे। जैसे आज राजस्थान से मिथिला तक साहित्य सृजन खड़ी बोली में होता है, किन्तु स्थान–भेद के अनुसार इस बहुत बड़े भू–भाग में सैकड़ों बोलियाँ बोली जाती हैं। इसलिए यह तो निश्चित ही है कि अपभ्रंश के रूपों की संख्या **याकोबी**, **तगारे** या **नामवर सिंह** की संख्याओं–चार, तीन और दो से अधिक ही रही होंगी, तभी उससे 13 उपभाषाएँ निकल सकती हैं।

एक अनुमान (डॉ. उदयनारायण तिवाड़ी) के अनुसार कम से कम सात अपभ्रंश रही होंगी, जिनसे 13 आधुनिक भारतीय भाषाएँ विकसित हुई हैं–

1. शौरसेनी अपभ्रंश से पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती।
2. पैशाची अपभ्रंश से लहँदा और पंजाबी।



BSEB

3. ब्राचड़ अपभ्रंश से सिंधी।

4. खस अपभ्रंश से पहाड़ी भाषाएँ।

5. महाराष्ट्री अपभ्रंश से मराठी।

6. अर्द्ध मागधी अपभ्रंश से पूर्वी हिन्दी।

7. मागधी से बिहारी, उड़िया, बंगाली, असमी।

## अपभ्रंश की विशेषताएँ

(1) अपभ्रंश में प्राकृत भाषाओं की समस्त स्वर और व्यंजन ध्वनियाँ उपलब्ध हैं। इस समय ह्रस्व ऍ, ओ, ड़, ढ, ध्वनियाँ मौजूद थीं। 'ऋ' का प्रयोग केवल लिखने में होता है, इसकी ध्वनि (उच्चारण) समाप्त होकर 'रि' रह गई। श, ष, के स्थान पर केवल एक 'स' मिलता है। मागधी अपभ्रंश केवल एक ऊष्म 'श' ही उपलब्ध है। महाराष्ट्री अपभ्रंश में 'ल' भी मिलता है।

(2) स्वरों के अनुनासिक रूप पूर्ववत दिखाई देते हैं।

(3) पालि और प्राकृत के समान अपभ्रंश में संगीतात्मक और बलात्मक स्वराघात की प्रवृत्ति है किन्तु झुकाव बलात्मक स्वराघात की ओर ही अधिक है।

(4) अपभ्रंश 'उकार बहुल' भाषा है। इसके अवशेष अवधी और ब्रज भाषा में आज भी देखे जा सकते हैं। यथा—एक्कु, अंगु, जगु आदि।

(5) पालि—प्राकृत की भाँति ध्वनि—परिवर्तन की प्रवृत्ति—लोप, आगम, विपर्यय समीकरण, विषमीकरण आदि आगे बढ़ती दिखायी देती है।

(6) शब्द के अन्त का स्वर अपभ्रंश में ह्रस्व होता गया। कभी—कभी अन्तिम स्वर का लोप भी हो जाता है, कीटक>कीडअ>कीड।

(7) आदि अक्षर पर स्वराघात के कारण वह सुरक्षित रहा। जैसे घोटक>घोडअ>घोडा, छाया>छाआ, आमलक>आमलअ>आँवला।

(8) अपभ्रंश में 'म' का 'व' में तथा 'व' का 'ब' में आदेश होता है। यथा—कमल>कँवल, बचन>बउण।

इसी प्रकार 'ष्ण' का 'न्ह' जैसे—कृष्ण>कान्हा; 'क्ष' का 'क्ख', जैसे पक्षी>पक्खी; 'य' का 'ज' जैसे—युगल>जुगल; तथा उ, द, न, र के स्थान पर 'ल' मिलता है।

(9) समीकरण हुए प्राकृत व्यंजनों में से अपभ्रंश में एक व्यंजन बचता है और क्षति पूर्ति के रूप में पूर्व स्वर का दीर्घीकरण हो जाता है। यथा—तस्य >तस्स>तासु (अपभ्रंश), कस्य >कस्स>कासु।

(10) अपभ्रंश संस्कृत परम्परा से अलग है। उसका झुकाव आधुनिक भारतीय भाषाओं की ओर है।

(11) अपभ्रंश में धातु और नाम रूपों में पर्याप्त कमी आई जिससे भाषा सरल और सुगम हो गई।

(12) वैदिकी, संस्कृत, पालि और प्राकृत ये चारों भाषाएँ संयोगात्मक थीं, प्राकृत में वियोगात्मकता के कुछ लक्षण दिखाई देने लगे थे। अपभ्रंश अधिक वियोगात्मक हो गई थी।

BSER

(13) प्राकृत में संज्ञा और सर्वनाम के कारण चिह्न दो या तीन ही थे जो अपभ्रंश में और अधिक बढ़ गये। जैसे–करण–तणः सम्प्रदान–केहि; अपादान–थिउ, होन्त; सम्बन्ध–केर, कर का; अधिकरण–महे–मज्झे।

(14) संयोगात्मक भाषाओं में 'तिङ्' प्रत्यय के कालरूप बनते थे जो कि वियोगात्मक में सहायक क्रिया से बनने लगे तथा कृदन्तीम रूपों से काल–रचना की जाने लगी और संयुक्त क्रिया का प्रयोग भी होने लगा।

(15) तीनों लिंगों में से नपुंसक लिंग का प्रयोग समाप्त हो गया।

(16) अकारान्त पुल्लिग शब्दों की भाषा में प्रमुखता हो गई। उन पर नियम लागू हुए जिससे भाषा में एकरूपता आई।

(17) कारक रूपों में कमी आई। संस्कृत में 17, प्राकृत में 12 काल रूप थे जो अपभ्रंश में घटकर केवल 6 रह गये। दो वचन, तीन कारक (कर्त्ता, कर्म, सम्बोधन), (करण, अधिकरण), (सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध)। इस प्रकार कुल 6 रूप ही अपभ्रंश में हैं।

(18) अपभ्रंश में स्वार्थिक प्रत्यय 'ड़' का प्रयोग होने लगा। जैसे–राजस्थानी में आँसूड़ा, आँखड़ी आदि।

(19) वाक्य में शब्दों का स्थान निश्चित हो गया।

(20) शब्द–भण्डार की दृष्टि से तद्भव शब्दों में प्रचुर वृद्धि हुई। अनेक देशज शब्द काम में लाये जाने लगे। ध्वनि और दृष्टि के आधार पर नये शब्दों का निर्माण भी किया गया। अपभ्रंश के उत्तरार्द्ध में पुनः तत्सम शब्दों का प्रचार बढ़ने लगा था। इस समय तक विदेशी (मुसलमान) भारत में पाँव जमाने को प्रयत्नशील थे, अतः उनसे सम्पर्क बढ़ने के कारण विदेशी शब्द भी अपभ्रंश से मिश्रित होने लगे थे। जैसे–ठट्ठा (फारसी–तश्त), ठक्कुर (तुर्की–तेगिन), नीक, तहसील, नौबती आदि।

## सक्रांति काल की भाषा अवहट्ठ

500 ई. से 1000 ई. तक अपभ्रंश एक अखिल भारतीय साहित्यिक तथा सांस्कृतिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित रही। अपभ्रंश मध्य प्रदेश की भाषा होने से विशेष महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली रही है। उस समय दैनिक व्यवहार के लिए भिन्न–भिन्न बोलियाँ प्रचलित थीं। उन्हीं बोलियों से हमारी आज की आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ विकसित हुई हैं।

जब ये बोलियाँ विकसित होकर साहित्यिक भाषा बनने का प्रयत्न कर रही थीं, उस समय साहित्यकारों की परिष्ठित अपभ्रंश में विशेष परिवर्तन के लक्षण दिखाई देने लगे थे। ऐसा लगता है कि कोई एक भाषा स्थानीय प्रभाव ग्रहण करके अपभ्रंश की भूमि पर अपना अस्तित्व बना रही थी। 1000 ई. के बाद लगभग दो–तीन सौ वर्षों की यह भाषा विभिन्न नामों से जानी गई। कुछ समय तक प्राचीन परम्परा के अनुसार इसे देशी भाषा कहा जाता रहा, किन्तु जब इसमें साहित्य सृजन प्रचुरता से होने लगा होगा तो वैयाकरणों ने इसे 'अवहट्ठ' की संज्ञा प्रदान की। यह भाषा अपभ्रंश के अन्तिम छोर और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के प्रारम्भिक छोर पर है। इसने अपभ्रंश और आधुनिक भाषाओं के मध्य कड़ी का काम किया है। कई विद्वान इसे परवर्ती अपभ्रंश, पुरानी हिन्दी, देशी भाषा आदि नामों से भी पुकारते हैं किन्तु उपयुक्त नाम 'अवहट्ठ' ही है।

'अवहट्ठ' शब्द का भाषा–विशेष के अर्थ में सर्वप्रथम प्रयोग अब्दुल रहमान ने 'संदेश रासक' में किया है। संस्कृत प्राकृत पैशाची के साथ 'अवहट्ठ' भाषा को रखने का तात्पर्य यही है कि 'अवहट्ठ' यहाँ अपभ्रंश का ही पर्याय है। चौदहवीं सदी में ज्योतिरीश्वर और विद्यापति ने भी 'अवहट्ठ' शब्द का प्रयोग भाषा के अर्थ में ही किया है। विद्यापति ने भी अवहट्ठ का प्रयोग अपभ्रंश के लिए ही किया है। अतः अवहट्ठ और अपभ्रंश भिन्न न होकर एक ही भाषाएँ हैं।

4. (क)

# प्राकृत साहित्य एवं गद्य संग्रह

## (पाइय साहित्य व गज्ज–संगहो)

BSER

# प्राकृत गद्य संग्रह

## 1. लोहस्स न अन्तो (उत्तराध्ययनटीका)

**पाठ परिचय :**

ऐसी मान्यता है कि श्रमणसम्राट् भगवान महावीर ने पावापुरी में निर्वाण प्राप्त करते समय अन्तिम प्रवचन के रूप में उत्तराध्ययन सूत्र का उपदेश किया था। इसके नाम से ही इसकी विशिष्टता ज्ञात होती है–उत्तराध्ययन अर्थात् अध्ययन करने योग्य उत्तमोत्तम प्रकरणों का संग्रह। भवसिद्धिक और परिमित संसारी जीव ही उत्तराध्ययन का भावपूर्वक स्वाध्याय करते हैं।

भाषाशास्त्रियों के मत में सर्वाधिक प्राचीन भाषा के तीन सूत्र हैं–1. आचारांग 2. सूत्रकृतांग और 3. उत्तराध्ययन। मूलसूत्रों के संबंध में अनेक मान्यताएँ होने पर भी 'उत्तराध्ययन' को सभी विद्वानों ने एक स्वर से मूलसूत्र माना है। स्थानकवासी सम्प्रदाय में 1. उत्तराध्ययन 2. दशवैकालिक 3. नन्दीसूत्र और 4. अनुयोगद्वार को मूल सूत्र में गिना जाता है। यहाँ उत्तराध्ययन सूत्र का क्रम पहले होते हुए भी साधकों द्वारा पहले दशवैकालिक और फिर उत्तराध्ययन सूत्र पढ़ा जाता है।

उत्तराध्ययन सूत्र में 36 अध्ययन हैं, जिन्हें निम्न चार भागों में विभक्त किया जा सकता है–

1. उपदेशात्मक– अध्ययन 1, 2, 3, 4, 5, 6 और 10

2. धर्मकथात्मक–अध्ययन 7, 8, 9, 12, 13, 14, 18, 19, 20, 21, 22, 23, 24 और 27

3. आचरणात्मक–अध्ययन 11, 15, 16, 17, 24, 26, 32 और 35

4. सैद्धान्तिक–अध्ययन 28, 29, 30, 31, 33, 34 और 36

डॉ. सुदर्शनलाल जैन के अनुसार उत्तराध्ययन सूत्र का विषय वर्गीकरण निम्नानुसार किया गया है–

1. शुद्ध दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रतिपादक अध्ययन–24 (समितीय), 26 (समाचारी), 28 (मोक्षमार्ग गति), 29 (सम्यक्त्व पराक्रम), 30 (तपोमार्ग), 31 (चरणविधि), 33 (लेश्या), 36 (जीवाजीवविभक्ति) और दूसरे एवं 16वें अध्ययन का गद्य भाग।

2. नीति एवं उपदेश प्रधान अध्ययन–1 (विनय), 2 (परीषह), 3 (चतुरंगीय) 4 (असंस्कृत), 5 (अकाममरण), 6 (क्षुल्लक–निर्ग्रन्थीय), 7 (एलय), 8 (कापिलीय), 10 (द्रुम पत्रक), 11 (बहुश्रुत पूजा), 16 (ब्रह्मचर्य समाधिस्थान का पद्य भाग), 17 (पापश्रमणीय), 32 (प्रमादस्थानीय) और 35 (अनगार)

3. आख्या ।नात्मक अध्ययन– 9 (नमिप्रव्रज्या), 1 ।2 (हरिकेशीय), 13 (चित्तसंभूतीय), 14 (इषुकारीय), 18 (संजय–संयतीय), 19 (मृगापुत्रीय) 20 (महानिर्ग्रन्थीय), 21 (समुद्रपालीय), 22 (रथनेमीय), 23 (केशीगौतमीय) और 25 (यज्ञीय)

उत्तराध्ययन सूत्र पूर्ण रूप से अध्यात्म शास्त्र है। दार्शनिक सिद्धान्तों के साथ इसमें बहुत से आख्यानों का संकलन है। इसमें साध्वाचार, उपदेशनीति, सदाचार, उस समय की प्रचलित सामाजिक, राजनैतिक परम्पराओं का समावेश है। भारतवर्ष में प्रचलित दूसरी परम्पराएँ भी इससे प्रभावित हुई हैं। उदाहरणार्थ–वैदिक परम्परा, महाभारत, गीता, मनुस्मृति आदि और बौद्ध धर्म के धम्मपद, सुत्तनिपात आदि ग्रन्थों पर भी स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। इसलिए उत्तराध्ययन सूत्र में वर्णित भाव अन्य परम्पराओं के ग्रन्थों से मिलते हैं। ध्यानपूर्वक पढ़ने से पता चलता है कि कहीं–कहीं तो शब्द भी एक से मिल जाते हैं। उनमें बहुत सी गाथा और पद भी ज्यों के त्यों मिल जाते हैं।

BSER

## मूलपाठ :

1. तेणं कालेणं तेणं समएणं कोसंबी नाम नयरी। जियसत्तू राया। कासवो उवज्झाओ विज्जाठाणपारगो राइणो बहुमओ। वित्ती से उवकप्पिया। तस्स जसा नाम भारिया। तेसिं पुत्तो कविलो नाम।

2. कासवो तम्मि कविले खुड्डुलाए चेव कालगओ। ताहे तम्मि मए तं पयं राइणा अन्नस्स विप्पस्स दिन्नं। सो य आसेण छत्तेण य धरिज्जमाणेण वच्चइ। तं दट्ठूण जसा परुण्णा। कविलेण पुच्छिया। ताए सिट्ठं जहा–'पिया ते एवं विहाए इड्ढीए निग्गच्छियाइओ, जेण सो विज्जासंपन्नो।'

3. सो कविलो भणइ–'अहं पि अहिज्जामि।' सा भणइ–'इह तुमं मच्छरेण न कोई सिक्खावेइ, वच्च सावत्थीए नयरीए पिउमित्तो इंददत्तो नाम उवज्झाओ सो तुमं सिक्खावेही।' सो गओ सावत्थीं, पत्तो य तस्स समीवं, निवडिओ चलणेसु। पुच्छिओ–'कओ सि तुमं ?' तेण जहावत्तं कहिअं। विणयपुव्वयं च पंजलिउडेण भणियं–'भयवं! अहं विज्जत्थी तुम्हं तायनिव्विसेसाणं पायमूलमागओ। करेह मे विज्जाए अज्झावणेण पसायं।'

4. उवज्झाएण वि पुत्तयसिणेहमुव्वहंतेण भणियं–'वच्छ! जुत्तो ते विज्जागहणुज्जमो, विज्जाविहीणो पुरिसो पसुणो निव्विसेसो होइ। इहपरलोए य विज्जा कल्लाणहेऊ। ता अहिज्जसु विज्जं, साहीणाणि य तुह सव्वाणि विज्जासाहणाणि, परं भोयणं मम घरे निप्परिग्गहत्तणओ नत्थि। तमंतरेण न संपज्जए पढणं।'

5. तेण भणियं–'भिक्खावित्तेण वि संपज्जइ भोयणं।' उवज्झाएण भणियं– 'न भिक्खावित्तीहिं पढिउं सक्किज्जए, ता आगच्छ पत्थेमो किंचि इब्भं तुह भोयणनिमित्तं।' गया ते दो वि तन्निवासिणो सालिभद्दइब्भस्स सयासं। कया उवसत्थी। पुच्छिओ इब्भेण पओयणं। उवज्झाएण भणियं–'एस मे मित्तस्स पुत्तो कोसंबीओ विज्जत्थी आगओ। तुज्झ भोएण निस्साए अहिज्जइ विज्जं मम सयासे। तुज्झ महंतं पुण्णं विज्जोवग्गहकरणेण।' सहरिसं च पडिवन्न तेण। सो कविलो तत्थ जिमिउं जिमिउं अहिज्जइ। एगा दासी तस्स परिवेसइ।

6. अन्नया सा दासी उव्विग्गा दिट्ठा। तेण पुच्छिआ–'कओ ते अरई ?' तीए भणियं–'मम समीवे पत्त–फुल्लाणं वि मोल्लं नत्थि। सहीण मज्झे विगुप्पिस्सं। अओ तुमं मज्झ किंचि धणं आणेह। एत्थ धणो नाम सेट्ठी। अप्पहाए चेव जो णं पढमं वद्धावेइ सो तस्स दो सुवण्णमासए देइ। तत्थ तुमं गंतूण वद्धावेहि।'

7. 'आमं' ति तेण भणिए तीए सो अइपभाए तत्थ पेसिओ। वच्चंतो य आरक्खियपुरिसेहि' गहिओ बद्धो य। तओ पभाए पसेणइस्स सो उवणीओ। राइणा पुच्छिओ। तेण सब्भावो कहिओ। राइणा भणियं जं मग्गसि तं देमि।' सो भणइ–'चितिउं मग्गामि।' राइणा 'तह' त्ति भणिए असोगवणियाए चिंतेउमारद्धो–

8. 'दोहिं मासेहिं वत्थाभरणाणि न भविस्संति ता सुवण्णसयं मग्गामि। तेण वि भवण–जाणवाहणाइं न भविस्संति ता सुवण्णसयं मग्गामि। इमेण वि डिंभरूवाणं परिणयणाइवओ न पूरेइ ता लक्खं मग्गामि। एसो वि सुहिसयण–बन्धु–सम्माणदीणाणाहाइ दाण–विसिट्ठ–भोगोवभोगाण ण पज्जत्तो ता कोडिं कोडिसयं कोडिसहस्सं वा मग्गामि।'

एवमाइ चितंतो सुहकम्मोदएण तक्खणमेव सुहपरिणाममवगओ संवेगमावन्नो लग्गो परिभाविउं–'अहो! लोभस्स विलसियं, दोण्ह सुवण्णमासाण कज्जेणागओ लाभमुवट्ठियं दट्ठूण कोडीहिं पि न उवरमइ मणोरहो। अन्नं च विज्जापढणत्थं विदेसमागओ जाव ताव अवहीरिऊण जणणिं, अवगणिऊण उवज्झायहिय–उवएसं, अवमन्निऊण कुल एएण लोहेण जाणमाणो वि मोहिओ।'

इय चिंतिऊण सो कविलो आगओ राइसगासं। राइणा भणियं–'कि चितियं ?' तेण य निय–मणोरह–वित्थरो कहिओ।*

* उत्तराध्ययन सुखबोधाटीका (नेमिचन्द्रसूरि) निर्णयससागर प्रेस, 1937 पाना 124–125।



BSER

## हिन्दी

उस युग और उस समय में कौशाम्बी नामक नगरी थी। राजा जितशत्रु था। वह विद्या का आधार–स्तम्भ काश्यप उपाध्याय राजा के द्वारा सम्मानित था। उसको नौकरी दे दी गयी। उस काश्यप के यशा नामक पत्नी थी। उनके कपिल नामक पुत्र था। उस कपिल के बचपन में ही काश्यप मृत्यु को प्राप्त हो गया। तब उसके मर जाने पर उसका पद राजा के द्वारा अन्य ब्राह्मण को दे दिया गया। वह घोड़े पर छत्र धारण किये हुए वहाँ से निकला। उसे देखकर यशा रोने लगी। कपिल ने (इसका कारण) पूछा। उसने कहा कि– तुम्हारा पिता भी इी प्रकार की समृद्धि के साथ निकलता था। क्योंकि वह विद्या–सम्पन्न था।

वह कपिल कहता है– 'मैं भी पढूँगा।' वह कहती है– 'यहाँ पर तुम्हें ईर्ष्या के कारण कोई नहीं पढ़ायेगा। तुम श्रावस्ती चले जाओ, वहाँ तुम्हारे पिता का मित्र इन्द्रदत्त नामक उपाध्याय है। वह तुम्हें सब सिखा देगा। कपिल श्रावस्ती चला गया और उस उपाध्याय के पास पहुँचा। उसके चरणों पर गिर पड़ा। उसने पूछा– 'तुम कहाँ से? कपिल ने सब कुछ कह दिया। हाथ जोड़कर विनयपूर्वक उसने कहा– 'हे भगवन्! पिता के निधन हो जाने से आपके चरणों में मैं विद्या के लिए आया हूँ। इसलिए विद्या पढ़ाकर मेरे ऊपर कृपा करिए।'

पुत्र की तरह स्नेह धारण करते हुए उपाध्याय ने कहा– पुत्र ! विद्या ग्रहण करने में तुम्हारा प्रयन्न उचित हैं। विद्या से रहित मनुष्य पशु के समान होता है। इस लोक और परलोक मं विद्या ही कल्याण करने में साधनरूप है। इसलिए विद्या पढ़ो। विद्या पढ़ने के सब साधन तुम्हें प्राप्त हैं, किन्तु परिग्रहरहित होने के कारण मेरे घर में भोजन नहीं है। उसके बिना पढ़ना नहीं हो सकेगा।

कपिल ने कहा– 'भिक्षावृति से भी भोजन मिल जायेगा। उपाध्याय ने कहा– 'भिक्षावृति से पढ़ना संभव नहीं है। इसलिए आओ, तुम्हारे भोजन की व्यवस्था के लिए किसी धनी के यहाँ चलते हैं। वे दोनों वहाँ के निवासी शालिभद्र धनी के यहाँ गये। उसे आशीर्वाद दिया। धनी ने (आने का) प्रयोजन पूछा। उपाध्याय ने कहा– 'यह मेरे मित्र का पुत्र कौशम्बी से विद्या पढ़ने के लिए आया है। तुम्हारी भोजन की व्यवस्था में मेरे पास यह विद्या पढ़ेगा। विद्या के साधन जुटाने से तुम्हें बड़ा पुण्य होगा। उस धनी ने सहर्ष इसे स्वीकार कर लिया। वह कपिल वहाँ भोजन करता हुआ पढ़ने लगा। एक नौकरानी उसे भोजन परोसती थी।

एक बार वह नौकरानी दुःखी दिखायी दी। कपिल ने पूछा– 'तुम किसी कारण दुःखी हो?' उसने कहा– 'मेरे पास पत्ते और फूल खरीदने के लिए भी उनकी कीमत नहीं है। सखियों के बीच में मुझे नीचा देखना पड़ता है। अतः तुम मेरे लिए कुछ धन लाओ। यहाँ धन नाम का सेठ है। प्रातःकाल के पहले ही जो उसे सबसे पहले बधाई देता है, वह उसके लिए दो माशा स्वर्ण देता है। वहाँ जाकर तुम बधाई दो।'

## अभ्यास

**शब्दार्थ :**

| | | |
|---|---|---|
| खुड्डलअ–छोटा | सिट्ठं–कहा | अज्झावण–अध्यापन |
| साहीण–प्राप्त | इब्भं–धनी | निस्सा–आश्रय |
| अरई–दुःख | विगुप्प–लज्जित होना | सब्भाव–सरलता |
| डिंभरूव–सन्तान | पज्जत–पर्याप्त | बिलसियं–विस्तार |

**वस्तुनिष्ठ प्रश्न :**

**सही उत्तर का क्रमांक कोष्ठक में लिखिए :**

1. कपिल के पिता को राज्य–सम्मान प्राप्त था–

(क) धनी होने के कारण (ख) ब्राह्मण होने के कारण

(ग) बलशाली होने के कारण (घ) विद्या–सम्पन्न होने के कारण ( )

**लघुत्तरात्मक प्रश्न :**

**प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :**

1. कपिल को उसकी माता ने कहाँ भेजा था ?
2. कपिल के भोजन की व्यवस्था किसने की ?
3. कपिल में धन का लोभ किसने जागृत किया ?

**निबन्धात्मक प्रश्न :**

(क) कपिल विद्याध्ययन के लिए क्यों गया ?

(ख) लोभ में पड़ जाने पर कपिल ने क्या सोचा ?

(ग) इस पाठ की शिक्षा अपने शब्दों में लिखिए।

BSER

# 2. मेरुपभस्स हत्थिणो अणुकंपा (ज्ञाताधर्मकथा)

**पाठ परिचय :**

प्राकृत भाषा के प्राचीन ग्रन्थों में अर्धमागधी में लिखित अंगग्रन्थ प्राचीन भारतीय संस्कृति और चिंतन के क्रमिक विकास को जानने के लिए महत्त्वपूर्ण साधन हैं। अंग ग्रन्थों में ज्ञाताधर्मकथा का विशिष्ट महत्त्व है। कथा और दर्शन का यह संगम ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के नाम में भी इसका विषय और महत्त्व छिपा हुआ है। उदाहरण प्रधान धर्मकथाओं का यह प्रतिनिधि ग्रन्थ है। ज्ञातपुत्र भगवान महावीर की धर्म कथाओं को प्रस्तुत करने वाले इस ग्रन्थ का नाम ज्ञाताधर्मकथा सार्थक है। विद्वानों ने अन्य दृष्टियों से भी इस ग्रन्थ के नामकरण की समीक्षा की है।

**दृष्टान्त एवं धर्म कथाएँ**

आगम ग्रन्थों में कथा–तत्त्व के अध्ययन की दृष्टि से ज्ञाताधर्मकथा में पर्याप्त सामग्री है। इसमें विभिन्न दृष्टान्त एवं ध ार्म कथाएं हैं, जिनके माध्यम से जैन तत्त्व–दर्शन को सहज रूप में जनमानस तक पहुँचाया गया है। ज्ञाताधर्मकथा आगमिक कथाओं का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। इसमें कथाओं की विविधता है और प्रौढ़ता भी। मेघकुमार, थावच्चापुत्र, मल्ली तथा द्रौपदी की कथाएँ ऐतिहासिक वातावरण प्रस्तुत करती हैं। प्रतिबुद्धराजा, अर्हन्नक व्यापारी, राजा रूक्मी, स्वर्णकार की कथा, चित्रकार कथा, चोखा परिव्राजिका आदि कथाएँ मल्ली की कथा की अवान्तर कथाएँ हैं। मूलकथा के साथ अवान्तर कथा की परम्परा की जानकारी के लिए ज्ञाताधर्मकथा आधारभूत स्रोत है। ये कथाएँ कल्पना–प्रधान एवं सोद्देश्य हैं। इसी तरह जिनपाल एवं जिनरक्षित की कथा, तेतलीपुत्र कथा, सुषमा की कथा एवं पुण्डरीक कथा कल्पना प्रधान कथाएँ हैं।

ज्ञाताधर्मकथा में दृष्टान्त और रूपक कथाएं भी हैं। मयूरों के अण्डों के दृष्टान्त से श्रद्धा और धैर्य के फल को प्रकट किया गया हैं। दो कछुओं के उदाहरण से संयमी और असयंमी साधक के परिणामों को उपस्थित किया गया है। तुम्बे के दृष्टान्त से कर्मवाद को स्पष्ट किया गया है। दावद्रव नामक वृक्ष के उदाहरण द्वारा आराधक और विराधक के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। ये दृष्टान्त कथाएँ परवर्ती साहित्य के लिए प्रेरणा प्रदान करती हैं।

इस ग्रन्थ में कुछ रूपक कथाएँ भी हैं। दूसरे अध्ययन की कथा धन्ना सार्थवाह एवं विजय चोर की कथा है। यह आत्मा और शरीर के संबंध का रूपक है। सातवें अध्ययन की रोहिणी कथा पांच व्रतों की रक्षा और वृद्धि को रूपक द्वारा प्रस्तुत करती है। उदकजात नामक कथा संक्षिप्त है। किन्तु इसमें जल–शुद्धि की प्रक्रिया द्वारा एक ही पदार्थ के शुभ एवं अशुभ दोनों रूपों को प्रकट किया गया है। अनेकान्त के सिद्धान्त को समझाने के लिए यह बहुत उपयोगी है। नन्दीफल की कथा यद्यपि अर्ध कथा है, किन्तु इसमें रूपक की प्रधानता है। समुद्री अश्वों के रूपक द्वारा लुभावने विषयों के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है।

छठे अध्ययन में कर्मवाद जैसे गुरु गंभीर विषय को रूपक के द्वारा स्पष्ट किया गया है। गणधर गौतम की जिज्ञासा के समाधान में भगवान ने तूंबे के उदाहरण से इस बात पर प्रकाश डाला कि मिट्टी के लेप से भारी बना हुआ तूंबा जल में मग्न हो जाता है और लेप हटने से वह पुनः तैरने लगता है। वैसे ही कर्मों के लेप से आत्मा भारी बनकर संसार सागर में डूबता है और उस लेप से मुक्त होकर ऊर्ध्वगति करता है। दसवें अध्ययन में चन्द्र के उदाहरण से प्रतिपादित किया है कि जैसे कृष्णपक्ष में चन्द्र की चारू चन्द्रिका मंद से मंदतर होती जाती है और शुक्ल पक्ष में वही चन्द्रिका उत्तरोत्तर अभिवृद्धि को प्राप्त होती है वैसे ही चन्द्र के सदृश कर्मों की अधिकता से आत्मा की ज्योति मंद होती है और कर्म की ज्यों–ज्यों न्यूनता होती है त्यों–त्यों उसकी ज्योति अधिकाधिक जगमगाने लगती है।

BSER

ज्ञाताधर्मकथा पशुकथाओं के लिए भी उद्‌गम ग्रन्थ माना जा सकता है। इस एक ही ग्रन्थ में हाथी, अश्व, खरगोश, कछुए, मयूर, मेंढक, सियार आदि को कथाओं के पात्रों के रूप में चित्रित किया गया है। मेरुप्रभ हाथी ने अहिंसा का जो उदाहरण प्रस्तुत किया है, वह भारतीय कथा साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। ज्ञाताधर्मकथा के द्वितीय श्रुतस्कंद में यद्यपि 206 साध्वियों की कथाए हैं, किन्तु उनके ढांचे, नाम, उपदेश आदि एक से हैं। केवल काली की कथा पूर्ण कथा है। नारी–कथा की दृष्टि से यह कथा महत्त्वपूर्ण है।

ज्ञाताधर्मकथा में भारतीय संस्कृति के विभिन्न पक्ष अंकित हुए है। प्राचीन भारतीय भाषाओं, काव्यात्मक प्रयोगों, विभिन्न कलाओं और विद्याओं, सामाजिक जीवन और वाणिज्य व्यापार आदि के संबंध में इस ग्रन्थ में ऐसे विवरण उपलब्ध हैं जो प्राचीन भारतीय संस्कृति के इतिहास में अभिनव प्रकाश डालते हैं। इस ग्रन्थ के सूक्ष्म सांस्कृतिक अध्ययन की नितान्त आवश्यकता है।

1. तए णं तुमं मेहा! अण्णया कयाइ मज्झिमए वरिसा–रत्तंसि महावुट्ठिकायंसि सण्णिवइयंसि जेणेव से मंडले तेणेव उवागच्छसि उवागच्छित्ता दोच्चंपि मंडलं घाएसि, एवं चरिमे–वासा–रत्तंसि महा–वुट्ठिकायंसि सण्णिवइय–माणंसि जेणेव से मंडले तेणेव उवागच्छसि उवागछित्ता तच्चंपि मंडलघायं करेसि जं तत्थ तणं वा जाव सुहंसुहेणं विहरसि।

2. अह मेहा! तुमं गइंदभावम्मि वट्टमाणो कमेणं णलिणि–वण–विवह–णगरे हेमंते कुंद–लोद्ध–उद्धुत–तुसार–पउरम्मि अइक्कंते अहिणवे गिम्ह समयंसि पत्ते वियट्टमाणे वणेसु वणकरेणु–विविह–दिण्णकय पंसुवघाओ तुमं उउय–कुसुमकय चामर–कण्णपूर परिमंडियाभिरामो मयवस–विगसंत कड–तडकिलिण्ण–गंधमदवारिणा सुरभि–जणियगंधो करेणु परिवारिओ उउ–समत्त–जणियसोहो काले दिणयर–करपयंडे परिसोयि–तरुवर–सिहर–भीमतर–दंसणिज्जे भिंगाररवंत–भेरवरवे–णाणाविह पत्तकट्ठ तण–कय वरुद्धुत पइमारुयाइद्ध–णहयल–दुमगणे वाउलिया–दारुणतरे तण्हावस–दोस दूसिय–भमंत विविह–सावय–समाउले भीम दरिसणिज्जे वट्टंते दारुणम्मि गिम्हे मारुयवस–पसर–पसरिय–वियंभिएणं, अब्भहिय–भीम भेरव–रवप्पगारेणं महुधारा–पडिय–सित्त–उद्धायमाण धगधगंत–सद्दुद्धएणं दित्ततर–सफुलिंगेणं धूममालाउलेणं सावय–सयंत करणेणं अब्भहियवण दवेणं जालालोविय–णिरुद्ध–धूमंधकारभीओ आयवालोय महेत–तुंबइयपुण्णकण्णो आकुंचिय थोर पीवरकरो भयवस भयंत दित्त णयणो वेगेण महामेहोव्व पवणोल्लियमहल्लरूवो जेणेव कओ ते पुरा दवग्गिभय–भीयहियएणं अवगय–तण–प्पएसरुक्खो रुक्खोद्देसो दवग्गि–संताण–कारणट्ठाए जेणेव मंडले तेणेव पहारेत्थ गमणाए। एक्को ताव एस गमो।

3. तए णं तुमं मेहा! अण्णया कयाइं कमेणं पंचसु उऊसु समइक्कंतेसु गिम्हकाल समयंसि जेट्ठामूले मासे पायवसंघंससमुट्ठिएणं जाव संवट्टिएसु मिय–पसु–पक्खिसरीसिवेसु दिसोदिसिं विप्पलायमाणेसु तेहिं बहूहिं हत्थीहि य सद्धिं जेणेव मंडले तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

4. तत्थ णं अण्णे बहवे सीहा य वग्घा य विगा य दीविया य अच्छा य तरच्छा य पारासरा य सरभा य सियाला सुणहा कोला ससा कोकंतिया चित्ता चिल्लला पुव्व पविट्ठ अग्गिभय विद्दुया एगयओ बिलधम्मेणं चिट्ठंति। तए णं तुमं मेहा! जेणेव से मंडले तेणेव उवागच्छसि 2 त्ता तेहिं बहूहिं सीहेहिं जाव चिल्ललेहि य एगयओ बिलधम्मेणं चिट्ठसि।

5. तएणं तुमं मेहा! पाएणं गत्तं कंडुइस्सामी त्तिकट्टु पाए उक्खित्ते, तंसि च णं अंतरंसि अण्णेहिं बलवंतेहिं सत्तेहिं पणोलिज्जामाणे 2 ससए अणुप्पविट्ठे। तए णं तुमं मेहा! गायं कंडुइत्ता पुणरवि पायं पडिणिक्खमिस्सामि त्तिकट्टु त ससयं अणुपविट्ठं पाससि 2 त्ता पाणाणुकंपयाए भूयाणुकंपयाए जीवाणुकंपयाए सत्ताणकंपयाए से पाए अंतरा चेव संधारिए णो चेव णं णिक्खित्ते। तए णं तुमं मेहा! ताए पाणाणुकंपयाए जाव सत्ताणुकंपयाए संसारे परित्तीकए माणुस्साउए णिबद्धे।

6. तए णं से वणदवे अड्ढाइज्जाइं राइंदियाइं तं वणं झामेइ 2 त्ता णिट्ठिए उवरए उवसंते विज्झाए यावि होत्था।

7. तए णं ते बहवे सीहा य जाव चिल्ललायंत वणदवं णिट्ठियं जाव विज्झायं पासंति 2 त्ता अग्गिभय विप्पमुक्का तण्हाए य छुहाए य परब्भाहया समाणा तओ मंडलाओ पडिणिक्खमंति 2 त्ता सव्वओ समंता विप्पसरित्था।



BSEB

8. तएणं ते बहवे हत्थी जाव छुआएय परब्भाहया समाणा तओ मंडलाओ पडिणिक्खमंति 2 त्ता दिसोदिसिं विप्पसरित्था। तए णं तुमं मेहा! जुण्णे जराज्जरियदेहे सिढिल–वलितया–पिणिद्धगत्ते दुब्बले किलंते जुंजिए पिवासिए अत्थामे जबले अपरक्कमे अचंकमणो वा ठाणुखंडे वेगेण विप्पसरिस्सामि त्तिकट्टु पाए पसारेमाणे विज्जुहए विव रययगिरिपब्भारे धरणि तलंसि सव्वंगेहिं सण्णिवइए।

9. तए णं तव मेहा! सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया उज्जला जाव दाहवक्कंतीए यावि विहरसि। तए णं तुमं मेहा! तं उज्जलं जाव दुरहियासं तिण्णि राइंदियाइं वेयणं वेयमाणे विहरित्ता एगं वाससयं परमाउं पाइलत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे रायगिहे णयरे सेणियस्स रण्णो धारिणीए देवीए कुच्छिंसि कुमारत्ताए पच्चायाए।

## हिन्दी

तुम हे मेघ! पूर्ण जम्म में चार दांतों वाले मेरूप्रभ नाम के हाथी हुए। एक बार उस जंगल की आग को देखकर तुम्हें यह इस प्रकार का संकल्प उत्पन्न हुआ – 'मेरे लिये यह श्रेय कर है कि इस समय गंगा महानदी के दक्षिणी तट पर विन्ध्याचल की तलहटी में जंगल की अग्रि से रक्षा करने के लिए अपने झुंड के साथ एक बड़ा मंडल (रक्षा का बड़ा मैदान) बनाऊँ।' ऐसा (विचार) करके इस प्रकार निरीक्षण करते हो। निरीक्षण करके सुखपूर्वक विचरण करते हो।

किसी अन्य समय क्रमशः पाँच ऋतुएं व्यतीत हो जाने पर ग्री मकारल के अवसर पर जेठ के महिने में पेड़ों की रगड़ से उत्पन्न अग्नि के फैल जाने पर मृग, पशु, पक्षी तथा सरकने वाले प्राणियों के विभिन्न दिशाओं में दौड़ने पर उन बहुत से हाथियों के साथ (तुम भी) जिस और वह मंडल था उसी ओर जाने के लिए दौड़े।

उस मण्डल में अन्य बहुत से सिंह, बाध, भेड़िया, चीते, रीछ, तरच्छ (?) पाराशर, शरभ, श्रृगाल, विडाल, कुत्ते, कोल (सुअर), खरगोश, लोमड़ी, चित्र और चिल्लल आदि अग्नि के भय से घबराकर पहले ही आ धुसे थे और एक साथ बिलधर्म के अनुसार (कम स्थान पर अधिक प्राणी ठहराने की तरह) ठहरे थे।

तब हे मेघ ! तुम भी जहाँ वह मंडल था, वहाँ आये और आकर उन बहुत से सिंहों से लेकर चिल्ललों आदि के साथ एक जगह बिलधर्म से ठहर गये।

तब तुमने – 'पैर से शरीर खुजाऊँगा' ऐसा सोचकर एक पैर ऊपर उठाया, इसी समय उस खाली हुई जगह में अन्य बलवान प्राणियों द्वारा धकियाया हुआ एक खरखोश प्रविष्ट हो गया। तुमने शरीर खुजाकर फिर से पैर को नीचे रखूँगा' ऐसा सोचकर नीचे घुसे हुए उस खरखोश को देखा। यह देखकर (दो इन्द्रिय आदि वाले) प्राणियों की अनुकंपा से, (वनस्पति आदि) भूतों की अनुकंपा से, (स्थावर) सत्त्वों की अनुकंपा से तुमने वह पैर अधर में ही उठाये रखा, उसे नीचा नहीं रखा। (अन्यथा वह खरखोश मर जाता)।

तब तुमने उस प्राणियों की अनुकंपा और सत्त्वों आदि की अनुकंपा से संसार बन्धन को कम किया और मनुष्य –आयु का बन्ध किया। तब वह जंगल की अग्नि अढ़ाई दिन–रात तक उस वन को जलाती रही। जलाकर (वह दावानल) पूरी हो गयी, उपरान्त उपशान्त हो गयी और बुझ गयी।

तब वे बहुत से सिंह, चिल्लात आदि उस वन की अग्नि को पूरा हुआ, बुझा हुआ देखते हैं। देखकर अग्नि के भय से मुक्त हुए। भूख और प्यास से पीड़ित, दुःखी वे पशु उस मण्डल से निकल आते हैं। निकलकर सब ओर जाकर फैल गये।

तब तुम हे मेघ! जीर्ण, जरा से जर्जरित शरीर वाले, शिथिल एवं सिकुडने वाली चमड़ी से व्यास शरीर वाले, दुर्बल, थके हुए, भूखे–प्यासे, आधार रहित, निर्बल, सामर्थ्यरहित, चलने–फिरने में असमर्थ ठूँठ की भाँति हो गये। ''मैं वेग से चलूँगा' ऐसा सोचकर ज्योंहि तुमने पैर पसारा कि बिजली से आघात पाये हुए रजतगिरि के शिखर के समान सभी अंगों से तुम धरती पर धड़ाम से गिर पड़े।

तब तुम्हारे शरीर में वेदना उत्पन्न हुई। तीन दिन–रात तक उस वेदना को भोगते हुए रहे। तब एक सौ वर्ष की पूर्ण आयु भोगकर इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भारतवर्ष के राजगृह नगर में श्रेणिक राजा की धारिणी नामक रानी की कूँख में कुमार के रूप में प्रविष्ट हुए।

## अभ्यास

**1. शब्दार्थ :**

**वरिसा–रत्तंसि** – बरसाती रात में, **महावुट्ठिकायंसि** – घनघोर वर्षा, **सण्णिवइयंसि** – होने पर, **चरिम वासा–रत्तंसि** – अंतिम बरसाती रात में। **गइंदभावम्मि** – गजेन्द्र भाव में, **वट्टमाणो** – वर्तमान, **णलिणि** – कमलिनि, **विवहणगरे** – विनाश करने वाले, **हेमंत** – हेमंत ऋतु आने पर, **लोद्ध** – हेमंत में विकसित होने वाला–लोध्र नामक वृक्ष विशेष, **तुसार** – बर्फ, **पउरम्मि** – प्रचुरता युक्त, **अहिणवे** – नूतन, **वियट्टमाणे** – इधर–उधर घूमते हुए, **पंसुवघाओ** – क्रीडावश धूली प्रहार, **उउयकुसुम** – ऋतुज पुष्प–ग्रीष्म ऋतु में होने वाले फूल, **मयवस** – मद के कारण, **विगसंत** – प्रफुल्लित होते हुए, **कडतड** – कपोल–स्थल, **किलिण्ण** – आर्द्र–गीले, **उउसमत्त** – ऋतु के अनुकूल, **पयंडे** – प्रचण्ड, **परिसोसिय** – परिशोषित –शुष्क बने हुए, **सिहर** – शिखर, **भेरव रवे** – भयंकर शब्द, **उद्धुत** – ऊपर उड़ान गए, **पउमारुय** – प्रतिकूल वायु, **आइद्ध** – व्याप्त, **णहयल** – नम तल, **वाउलिया** – वातुलिका–चक्रवात, **दारुणतरे** – अति भयंकर, **दोस दूसिय** – वेदना पीड़ित, **वट्टंते** – वर्तमान, **वियंभिएण** – प्रबल बने हुए, **अब्भहिय** – अत्यधिक, **महुधारा** – मधुधारा, **उद्धायमाण** – बढ़ते हुए, **सद्दुद्धुएणं** – शब्दायमान, **दित्ततर सफुलिंगेणं** – अत्यंत दीप्त–चिनगारियों से युक्त, **सावयसयंत करणेणं** – सैकड़ों जंगली प्राणियों का अंत करने वाले, **जालालोविय** – अग्नि की ज्वालाओं से आच्छादित, **आयवालोय** – अग्नि जनित ताप का अवलोकन, **पवणोल्लिय** – प्रचण्ड वायु द्वारा प्रेरित, **अवगय** – अपगत–दूर किए गए, **संताणकारणट्ठए** – त्राण पाने के लिए, **पहारेत्थ** – निश्चय किया, **गम** – आलापक–पाठ। **वग्घा** – व्याघ्र, **विगा** – वष्क–भेड़िया, **दीविया** – द्वीपी–चीते, **अच्छा** – रींछ–भालू, **तरच्छा** – व्याघ्र विशे ा, **पारासरा** – वन्य जन्तु विशेष, **सियाला** – श्रृंगाल–गीदड़, **विराल** – जंगली बिलाव, **सुणहा** – जंगली कुत्ते, **कोला** – सूअर, **ससा** – खरगोश, **कोकंतिया** – लोमड़ियाँ, **चित्ता** – चीतल, **चिल्लाला** – जंगली गधे, **पुव्वपविट्ठ** – पूर्व प्रविष्ट, **अग्गिभयविद्दुया** – अग्नि के भय से दौड़कर आए हुए, **बिलधम्मेणं चिट्ठंति** – बिल धर्म से स्थित हुए। **गत्तं** – गात्र–शरीर, **कुंडुइस्सामी** – खुजलाऊँ, **उक्खित्ते** – ऊंचा किया, **तंसि अंतरंसि** – उस अंतराल में, उस समय में, **पणोलिज्जमाणे** – धकेला गया, **अणुपविट्ठे** – अनुप्रविष्ट हुआ, **पडिणिक्खमिस्सामि** – वापस वहीं टिकाऊँ, **अंतरा चेव** – बीच में ही, **संधारिए** – रोक लिया, **परित्तीकए** – परिमित, स्वल्प किया, **माणुस्साउए** – मनुष्य का आयुष्य। **उड्डइज्जाइं** – अढ़ाई, **राइंदियाइं** – रात–दिन, **झामेइ** – जलाता है, **णिट्ठिए** – क्षीण हुआ, **उवरए** – उपरत हुआ–समाप्त हुआ, **उवसंते** – उपशांत, **विज्झाए** – बुझा हुआ। **सिढिल** – शिथिल, **वलितया** – वलित्वचा–झुर्रियों से युक्त चमड़ी, **पिणिद्ध**

– आच्छादित, **जुंजिए** – क्षुधा युक्त, **अत्थाने** – स्थिरता रहित, **अचंकमणो** – चलने में असमर्थ, **ठाणुखंडे** – ठूंठ के टुकड़े के सदृश, **विप्परिस्सामि** – आगे चलूँ, **विज्जुहए विव** – बिजली द्वारा आहत, **रययगिरिपब्भारे** – रजतगिरी के खंड की तरह, **धरणितलंसि** – भूतल पर, **सव्वंगेहिं** – सभी अंगों से, **सण्णिवइए** – गिर पड़ा। **कुमारत्ताए** – राजकुमार के रूप में, **पच्चायाए** – प्रत्यागत–उत्पन्न हुए।

**2. वस्तुनिष्ठ प्रश्न :**

**सही उत्तर का क्रमांक कोष्ठक में लिखिए :**

1. जंगल में आग लगने पर खरगोश ने शरण ली–

(क) शेर की गुफा में (ख) जमीन के नीचे

(ग) हाथी के पैर के नीचे (घ) घास की झोपड़ी के नीचे ( )

**3. लघुत्तरात्मक प्रश्न :**

**प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :**

1. मेरुप्रभ हाथी ने जंगल में मैदान क्यों बनाया ?

2. उस मैदान में मेरुप्रभ हाथी ने अपना पैर क्यों उठाया ?

3. मेरुप्रभ को अनुकम्पा करने पर क्या फल मिला ?

**4. निबन्धात्मक प्रश्न :**

(क) मेरुप्रभ हाथी ने जंगल की अग्नि को देखकर क्या किया ?

(ख) मेरुप्रभ ने खरगोश के जीवन की रक्षा के लिए क्या कष्ट सहे ?

(ग) 'प्राणी–रक्षा' पर 10–15 पंक्तियाँ लिखिए।

BSER

# 3. अगिसम्मस्स पराहवो (समराइच्चकहा)

**पाठ परिचय :**

हर व्यक्ति में महत्त्वाकांक्षा होती है। महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए महान् काम करने की इच्छा भी रहती है, पर महान् काम वही व्यक्ति कर सकता है जो उदार, अनाग्रही और आत्मरत होता है।

आचार्य हदिभद्र सूरि जितने स्वाभिमानी थे उतने ही अनाग्रही भी थे। वे एक विशिष्ट ब्राह्मण कुल में पैदा हुए थे। उन्हें अपने ज्ञान पर बहुत बड़ा गर्व था। उनका यह संकल्प था कि जो मुझे अपने ज्ञान से हरा देगा, उसी को मैं अपना गुरु बनाऊंगा।

एक दिन रात्रि के समय वे कहीं जा रहे थे। रास्ते में एक मकान में बैठी जैन साध्वी याकिनी—महत्तरा 'संग्रहणी' ग्रन्थ का स्वाध्याय कर रही थी। उसमें एक श्लोक आया—

**चक्कि दुगं हरिपणगं चक्कीण केसवो चक्की।**

**केसव चक्की केसव दुचक्की केसव चक्कीय।।**

हरिभद्र ने यह पद्य सुना पर समझ में नहीं आया। वे तत्काल अभिमान छोड़कर ऊपर गए और विनम्र भाव से इस श्लोक का अर्थ पूछने लगे। अर्थ—बोध होते ही उन्होंने आर्या याकिनी महत्तरा को अपना बोधिगुरु स्वीकार कर लिया तथा जैन दर्शन के सिद्धांतों में आस्थावान हो गए। इसके बाद वे श्वेताम्बर परम्परा के आचार्य जिनभट्ट के विद्याधार गच्छ में आचार्य जिनदत्त के पास दीक्षित हो गए। श्रुत परम्परा के अनुसार इनका समय विक्रम की आठवीं—नौवीं शताब्दी माना जाता है।

आचार्य हरिभद्र सूरि का जैन परम्परा में अपना एक विशिष्ट स्थान है, क्योंकि उन्होंने जो श्रुत आराधना और जैन धर्म की प्रभावना की है वह बेजोड़ है। उनका दृष्टिकोण बहुत ही व्यापक और ग्राहक था। वे अपने संघ को बौद्ध और वैदिक दर्शन से भी लाभान्वित करना चाहते थे। वैदिक तो पहले वे खुद थे ही इसलिए उस दर्शन को समझने के लिए उन्हें अतिरिक्त प्रयास नहीं करना पड़ा। बौद्ध दर्शन की जानकारी के लिए उन्होंने अपने दो भानेज शिष्य हंस और परमहंस को नालंदा विश्वविद्यालय में गुप्त रूप से शिक्षा लेने के लिए भेजा, क्योंकि उस समय साम्प्रदायिक कट्टरता के कारण एक—दूसरे को ज्ञान नहीं दिया जाता था। हंस और परमहंस प्रच्छन्न रूप से बौद्ध छात्रों के साथ पढ़कर वापस आने वाले थे, तब अचानक किसी कारणवश उनका भेद खुल गया।

वे वहां से बचकर निकल जाना चाहते थे पर वहां के लोगों ने उनका पीछा किया। एक भाई को उन्होंने मार डाला और दूसरा हांफता—हांफता हरिभद्र के पास पहुंच गया। हरिभद्र को जब इस बात का पता चला तो वे आपे से बाहर हो गए। उन्हें यह ध्यान ही न रहा कि वे साधु हैं और बहुत बड़े धर्म—संघ के आचार्य हैं।

हरिभद्र सूरि विद्वान् थे, उसके साथ वे तांत्रिक भी थे। प्रतिशोध की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने अपने तंत्र–बल से 1444 बौद्ध शिष्यों को तत्काल अपने उपाश्रय में बुलाया और निराधार आकाश में लटका दिया। नीचे अग्नि की बड़ी–बड़ी भट्टियां जलाकार तैल के कड़ाहे रख दिए गए क्योंकि आचार्य हरिभद्र के मन में उबलते तैल में बौद्ध छात्रों को तलने का अध्यवसाय बन गया था।

निम्न गद्यांश में अग्निशर्मा और गुणसेन (समरादित्य) के बचपन की घटनाएं वर्णित हैं। अग्निशर्मा अपनी कुरूपता और निर्धनता के कारण राजकुमार गुणसेन से बहुत अपमान प्राप्त करता है। उससे दुखी होकर वह साधु बन जाने का निश्चय कर लेता है। एक आश्रम में जाकर वह साधु–जीवन व्यतीत करने लगता है। अग्निशर्मा एक माह में एक बार भोजन करने का प्रण करता है। इस प्रकार वह कठोर जीवन व्यतीत करता है।

**पाठ** :

1. अत्थि इहेव जम्बूद्दीवे दीवे, अवरविदेहे वासे, उतुंगधवलवागार–मंडियं, नलिणिवणसंछन्नपरिहासणाहं, सुविभत्ततिय–उचक्क–चच्चरं, भवणेहिं जियसुरिन्दभवणसोहं खिइपइट्ठियं नाम नयरं।

जत्थ विलयाउ कमलाइं कोइलं कुवलयाइं कलहंसे।
वयणेहि जंपिएण य नयणेहि गईहि य जिणन्ति।।1।।
जत्थ य नराण वसणं विज्जासु, जसम्मि निम्मले लोहो।
पावेसु सया भीरुत्तणं च धम्मम्मि धणबुद्धी।।2।।
तत्थ य राया संपुण्णमण्डलो मयकलंकपरिहीणो।
जण–मण–नयणाणन्दो नामेणं पुण्णचन्दो त्ति।।3।।
अन्तेउरप्पहाणा देवी नामेण कुमुइणी तस्स।
सइ वड्ढियविसयसुहा इट्ठा य रइ व्व मयणस्स।।4।।
ताण य सुओ कुमारो गुणसेणो नाम गुणगणाइण्णो।
बालत्तणओ वंतरसुरो व्व केलिप्पिओ णवरं।।5।।

2. तम्मि य नयरे अतीव सयलजणबहुमओ, धम्मसत्थ–संघायपाढओ, लोग–ववहारनीइकुसलो, अप्पारम्भपरिग्गहो जन्नदत्तो नाम उवज्झाओ त्ति। तस्स य सोमदेवागब्भसंभओ, महल्लतिकोणुत्तिमंगो, आपिंगलवट्टलोयणो, ठाणमेत्तोवलक्खिय–चिविडनासो, बिलमेतकण्णासन्नो, विजियदन्तच्छयमहल्लदसणो, वंकसुदीहरसिरोहरो, विसमपरिहस्सबाहुजुयलो, अइमडहवच्छत्थलो, वंकविसमलम्बोयरो, एक्कपासुन्नयमहल्लवियडकडियडो, विसमपइट्ठिऊरुजुयलो, परिथूलकढिणहस्सजंघो, विसमवित्थिण्णचलणो, हुतहुयवह–सिहाजालपिंगकेसो, अग्गिसम्मो नाम पुत्तो त्ति।

3. तं पुत्तं च कोउहल्लेण कुमार गुणसेणो पहय–पडुपडहमुइंगवंसकंसालयप्पहाणेण महया तूरेण नयरजणामज्झ सहत्थतालं हसन्तो नच्चावेइ, रासहम्मि आरोवियं, पहट्ठबहुडिम्भबिन्दपरिवारियं, छित्तरमयधरियपोण्डरीयं, मणहरुत्तालावज्जन्तडिन्डिमं, आरोवियमहारायसद्दं, बहुसो रायमग्गे सुतुरियतुरियं हिण्डावेइ।

BSER

4. एवं च पइदिणं कयन्तेणेव तेण कयत्थिज्जन्तस्स तस्स वेरग्गभावणा जाया। चिन्तियं च णेण–

बहुजणधिक्कारहया ओहसणिज्जा य सव्वलोयस्स।

पुव्वि अकयसुपुण्णा सहन्ति परपरिभवं पुरिसा।।6।।
जइ ता न कओ धम्मो सप्पुरिसनिसेविओ अहन्नोणं।
जम्मन्तरम्मि घणियं सुहावहो मूढहियएणं।।7।।
एणिहं पि फलविवागं उग्गं दटठूणमकयपुण्णाणं।
परलोयबन्धुभूयं करेमि मुणिसेवियं धम्मं।।8।।
जम्मन्तरे विजेणं पावेमि न एरिसं महाभीमं।
सयलजणोहसणिज्जं विडम्बणं दुज्जणजणाओ।।9।

5. एवं च चिन्तिय पवन्नवेरग्गमग्गो निग्गओ नयराओ, पत्तो य मासमेत्तेण कालेण तव्विसयसन्धिसंठियंकृकृकृकृसुपरिओसं नाम तवोवणं त्ति। अह पविट्ठो सो तवोवणं। दिट्ठो य तेण तावसकुलप्पहाणो अज्जवकोडिण्ण नामो त्ति। पेच्छिऊण य पणामिओ तेणं। पुच्छिओ इसिणा–'कुओ भवं आगओ ?' त्ति। तओ तेण सवित्थरो निवेइओ से अत्तणो वुत्तन्तो। भणिओ य इसिणा–'वच्छ! पुव्वकयकम्मपरिणइवसेणं एवं परिकिलेसभाइणो जीवा हवन्ति। ता नरिन्दावमाणपीडियाणं, दारिद्दुक्खपरिभूयाणं, दोहग्गकलंकदूमियाणं, इट्ठजणविओगदहणतत्ताणं य एयं परं इह–परलोयसुहावहं परमनिव्वुइट्ठाणं त्ति। एत्थ–

पेच्छन्ति न संगकयं दुक्खं अवमाणणं च लोगाओ।

दोग्गइपडणं च तहा वणवासी सव्वहा धन्ना।।10।।

6. एवमणुसासिएण भणियं अग्गिसम्मेणं–'भगवं! एवमेयं, न संदेहो त्ति। ता जइ भयवओ ममोवरि अणुकम्पा, उचिओ वा अहं एयस्स वयविसेसस्स, ता करेहि मे एयवयप्पयाणेणाणुग्गहं' त्ति। इसिणा भणियं– 'वच्छ! वेरग्गमग्गाणुगओ तुमं ति करेमि अणुग्गहं, को अन्नो एयस्स उचिओ' त्ति। तओ अइकन्तेसु कइवयदिणेसु संमिऊण य सवित्थरं नियममायारं, पसत्थे तिहिकरणमुहुत्त–जोग–लग्गे दिन्ना से तावसदिक्खा।

7. महापरिभवजणियवेरग्गाइसयभाविएण याणेण तम्मि चेव दिक्खादिवसे सयलतावसलोयपरियरियगुरुसमक्खं कया महापइन्ना। जहा–'जावज्जीवं मए मासाओ मासाओ चेव भोत्तव्वं, पारणगदिवसे य पढमपविट्ठेणं पढमगेहाओ चेव लाभे वा अलाभे वा नियत्तियव्वं, न गेहन्तरमभिगन्तव्वं ति।' एवं च कयपइन्नस्स तस्स जहाकयं पइन्नमणुपालिन्तस्स अइक्कन्ता बहवे दियहा।*

* समराइच्चकहा–प्रथमखण्ड (सं.–डॉ. छगनलाल शास्त्री), बीकानेर, 1966 पृ. 12–18 से उद्धृत।

## हिन्दी

यहाँ पर ही जम्बूद्वीप द्वीप में, अपरविदेह देश में ऊँचे, सफेद परकोटे से सुशोभित, कमलिनियों के वन से ढकी हुई खाई से युक्त, तिराहे एवं चौकों से अच्छी तरह विभक्त, भवनों से इन्द्र के भवन की शोभा को जीतने वाला क्षितिप्रतिष्ठित नामक नगर था।

गाथा – 1. जिस देश की कामिनियाँ अपने मुखों से कमलों को, वाणी से कोयल को, नेत्रों से नीलकमलों को और अपनी गति से राजहँसों को जीतती हैं।



BSER

2. जहाँ पर पुरुषों को विद्याओं में व्यसन था, निर्मल यश में लोभ था, सदा पापों में भीरूता थी तथा धर्म के कार्यों में संग्रह–बुद्धि थी।

3. वहाँ पर अधीनस्थ राजमंडलों से परिपूर्ण, मदरूपी कलंक से रहित, जनता के मन और नयनों को आनन्द देने वाला पूर्णचन्द्र नाम का राजा था, (जो वास्तव में पूर्णिमा के चन्द्र की तरह था)।

4. उस राजा के अन्तःपुर में प्रधान कुमुदिनी नामक रानी थी। उसके साथ विषय सुखों की वृद्धि होती रहती थी। वह कामदेव के लिए रति की तरह राजा को प्रिय थी।

5. उनके गूण–समूहों से युक्त गुणसेन नामक पुत्र था, जो बालकपन में ही व्यंतर देव की तरह मात्र क्रीड़ाप्रिय था।

और उसी नगर में सब लोगों के द्वारा अत्यन्त सम्मानित, धर्मशास्त्र के समूह का पाठक, लोक–व्यवहार में नीतिकुशल, अल्प हिंसा और अल्प परिग्रह वाला, यज्ञदत्त नामक उपाध्याय था। उसकी पत्नी सोमदेवा के गर्भ से उत्पन्न, बड़ा और तिकौने सिर वाला, पीली और गोल आँखों वाला, स्थान मात्र से मालूम पडने वाली चपटी नाक वाला, छेद मात्र से युक्त कानों वाला, ओठों से बाहर निकले हुए बड़े दांतों वाला, टेढ़ी और मोटी गर्दन वाला, असमान और छोटी–छोटी बाँहों वाला, अत्यन्त छोटे वक्षस्थल वाला, ऊँचा–नीचा और लम्बे पेट वाला, एक ओर उठी हुई बेडौल कमर वाला, असमान रूप से स्थित जंघाओं वाला, मोटी, कड़ी और छोटी पिंडलियों वाला, असमान और चौड़े पैरों वाला आग की लपटों की तरह पीले बालों वाला अग्निशर्मा नाम का पुत्र था।

उस (अग्निशर्मा नामक) पुत्र को कौतूहलवश कुमार गुणसेन नगाडे, पटह, मृदंग, बांसुरी, मंजीरों आदि एवं बडे तूर की आवाज से, नगर के बीच में, हाथों से तालियाँ बजाता हुआ, हँसता हुआ नचाता था। गधे पर चढ़ाकर, हँसते हुए बहुत से बालकों से घिरे हुए छत्र के रूप में फटे सूप को धारण कराये हुए, मनोहर पर बेसुरे ताल से डोंडी पिटवाया हुआ, महाराज शब्दों से सम्बोधित करता हुआ बहुत बार राजमार्ग में जल्दी–जल्दी उस अग्निशर्मा को घुमाता था।

इस प्रकार प्रतिदिन यमराज की तरह उस गुणसेन के द्वारा अपमानित किये जाते हुए उस अग्निशर्मा के (मन में) वैराग्य भावना उत्पन्न हो गयी। वह सोचने लगा–

**गाथा– 6.** 'पूर्व जन्म में पुण्यकर्म न करने वाले बहुत से लोगों के धिक्कार से पीड़ित और सब लोगों के उपहास योग्य पुरुष दूसरों के अपमान को सहते हैं।

7. पूर्वजन्म में मुझ मूढहृदय अधन्य के द्वारा, जो सज्जन पुरुषों के द्वारा आचरित, अत्यन्न सुख देने वाले धर्म का आचरण नहीं किया गया है।

8. सो अब पुण्य न करने वालों के इस तीव्र फलविपाक को देखकर मैं परलोक में बन्धु के समान मुनियों के द्वारा सेवित इस धर्म को करूँगा।

9. जिससे अगले जन्म में भी दुर्जन लोगों से समस्त लोगों के द्वारा उपहास किये जानी वाली इस प्रकार की विडम्बना को पुनः न करूँ।

इस प्रकार सोचकर वैराग्य को प्राप्त वह अग्निशर्मा नगर से निकला और एक महीने में उस प्रदेश की सीमा पर स्थित 'सुररितोश' नामक तपोवन को पहुँच गया। फिर वह तपोवन में प्रविष्ट हुआ। उसने तापसकुल के प्रधान आर्जव कोडन्य को देखा। देखकर उसने उनको प्रणाम किया। ऋषि ने उससे पूछा– 'आप कहाँ से आये हैं?' तब अग्निशर्मा विस्तार से अपना सब वृत्तान्त उन्हें कह दिया। तब ऋषि ने कहा– 'हे वत्स ! पूर्व–जन्मों में किये गये कर्मों



BSEB

के परिणाम अपमान से पीड़ितों के लिए, दरिद्रता के दुःख से दुःखी लोगों के लिए, दुर्भाग्य के कलंक से उदास लोगों के लिए और इष्टजनों के वियोग की अग्नि में जले हुए लोगों के लिए यह आश्रम इस लोक और परलोक में सुख देने वाला तथा परम शान्ति का स्थान है। यहाँ पर –

गाया – 10. वनवासी सर्वथा धन्य हैं, जो आसक्तिजनित दुःख, लोगों के द्वारा किये अपमान और दुर्गति में गमन को नहीं देखते हैं।

इस प्रकार से उपदेश पाये हुए अग्निशर्मा ने कहा– 'भगवान्! ऐसी ही बात है, इसमें कोई संदेह नहीं है। अतः यदि आपकी मेरे ऊपर अनुकम्पा है और इस व्रत विशेष के लिए मैं उचित हूँ तो मुझे यह व्रत प्रदान करके अनुगृहीत करें।' ऋषि ने कहा– हे वत्स! तुम वैराग्यपथ के अनुगामी हो अतः मुझे तुम्हारा अनुरोध स्वीकार है। तुम्हारे सिवाय दूसरा कौन इस व्रत के लिय योग्य है। ऐसा कहकर तब कुदिन व्यतीत हो जाने पर अपने नियम और आचार विस्तार से समझाकर प्रशस्त तिथि, करण, मुहूर्त्त एवं लग्न में उस अग्निशर्मा को तापसदीक्षा दे दी गयी।

महान् तिरस्कार से उत्पन्न अतिशय वैराग्य भावना के कारण उस अग्निशर्मा ने उसी दीक्षा के दिन में ही समस्त तापस लोगों से घिरे हुए गुरू के समझ एक महाप्रतिज्ञा की कि– मैं जीवन–पर्यन्त एक माह के अन्तर से ही भोजन करूँगा। और पारणा के दिन सर्वप्रथम प्रविष्ट पहले घर से ही लौट आऊँगा। भिक्षा प्राप्त हो अथवा नहीं, दूसरे घर में नहीं जाऊँगा। और इस प्रकार प्रतिज्ञा लेने वाले तथा उसका उसी प्रकार पालन करने वाले उस अग्निशर्मा के बहुत से दिन व्यतीत हो गये।

## अभ्यास

**शब्दार्थ :**

| | | |
|---|---|---|
| संछन्न–व्याप्त | तिय–तिराहा | चच्चरं–चौक |
| विलआ–स्त्री | वसणं–अभ्यास | इट्ठ–मनपसन्द |
| आइण्ण–भरा हुआ | उत्तिमंग–सिर | वट्ट–गोल |
| चिविड–चपटी | बिलभेत्त–छेदमात्र | सिरोहर–गर्दन |
| मडह–छोटा | कंसालय–मंजीरे | रासह–गधा |
| कयत्थ–अपमान | पवन्न–प्राप्त | दूमिय–दुखी |
| संग–परिग्रह | संसिऊण–समझाकर | पसत्थ–अच्छा |

BSER

**वस्तुनिष्ठ प्रश्न :**

**सही उत्तर का क्रमांक कोष्ठक में लिखिए :**

1. क्षितिप्रतिष्ठित नगर में लोगों का लोभ था–

   (क) धन में  (ख) सन्तान में

   (ग) युद्ध में  (घ) निर्मल यश में  ( )

2. परलोक का एक मात्र बन्धु है–

   (क) महल  (ख) धन–पैसा

   (ग) धर्म  (घ) मित्र  ( )

**लघुत्तरात्मक प्रश्न :**

**प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :**

1. गुणसेन के माता–पिता का क्या नाम था?
2. अग्निशर्मा किस बात से दुखी था?
3. अपमान से छुटकारा पाने के लिए अग्निशर्मा ने क्या किया?
4. तपोवन में अग्निशर्मा ने क्या प्रतिज्ञा की?

**निबन्धात्मक प्रश्न :**

(क) क्षितिप्रतिष्ठित नगर का वर्णन अपने शब्दों में करो।

(ख) अग्निशर्मा की कुरुपता का वर्णन करो।

(ग) गुणसेन अग्निशर्मा को कैसे सताता था, संक्षेप में लिखो।

(घ) अग्निशर्मा की वैराग्य भावना को संक्षेप में लिखो।

BSER

# 4. धणदेवस्स पुरिसत्थ (कुवलयमालाकहा)

**पाठ परिचय :**

आचार्य उद्द्योतनसूरि भारतीय वाङ्मय के बहुश्रुत विद्वान् थे। उनकी एकमात्र कृति कुवलयमालाकहा उनके पाण्डित्य एवं सर्वतोमुखी प्रतिभा का पर्याप्त निकष है। उन्होंने न केवल सिद्धान्तग्रन्थों का गहन अध्ययन और मनन किया था, अपितु भारतीय साहित्य की परम्परा और विद्याओं के भी वे ज्ञाता थे। अनेक प्राचीन कवियों की अमर कृतियों का अवगाहन करने के अतिरिक्त लौकिक कलाओं और विश्वासों के भी वे जानकार थे। अतः उनकी कुवलयमालाकहा सिद्धान्त, साहित्य और लोक–संस्कृति के सुन्दर सामंजस्य का प्रतिफल है।

उद्द्योतनसूरि की शैक्षणिक गुरुपरम्परा में दो नाम उल्लिखित हैं। सिद्धान्त–ग्रन्थों का अध्ययन उद्द्योतनसूरि ने आचार्य वीरभद्र से किया, जो कल्पवृक्ष की भाँति सभी प्रश्नों को समाहित करने की क्षमता रखते थे। तथा लेखक के प्रमाण और न्याय (युक्तिशास्त्र) के गुरु आचार्य हरिभद्रसूरि थे, जिन्होंने समराइच्चकहा आदि अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

उद्द्योतनसूरि ने कुवलयमाला में अपनी विनयशीलता व्यक्त की है तथा सम्भावित भूलों की ओर भी संकेत किया है, इससे उनकी काव्यप्रतिभा और उभरकर सामने आयी है। नगर, ऋतु, प्राकृतिक दृश्यों आदि के वर्णन जितने काव्यात्मक हैं, उतने ही लुभावने। कथा के वातावरण एवं सन्दर्भ के अनुकूल भी। लेखक प्राकृत भाषा के प्रयोग में सिद्धहस्त है। पात्रों की सामाजिक एवं व्यक्तिगत योग्यता के अनुरूप ही उनके कथनोपकथन निर्मित किये गये हैं। एक ही ग्रन्थ में प्राकृत के विविध रूपों एवं संस्कृत, अपभ्रंश, पैशाची और देशी भाषाओं के शब्दों का बहुविध प्रयोग उद्द्योतनसूरि की भाषागत सजगता का प्रतीक है।

कुवलयमाला के रचना–स्थल के सम्बन्ध में भी उद्द्योतनसूरि ने स्पष्ट उल्लेख किया है। उद्द्योतनसूरि आचार्य वीरभद्र के साक्षात् शिष्य थे। आचार्य वीरभद्र जावालिपुर (जालौर) में निवास करते थे, जहाँ के राजा का नाम श्री वत्सराज रणहस्तिन् था। वीरभद्र आचार्य ने जावालिपुर में ऋषभ जिनेश्वर का एक भव्य ऊँचा मंदिर बनवाया था। इसी मंदिर के उपासरे में बैठकर उद्द्योतनसूरि ने कुवलयमालाकहा की रचना की थी।

कुवलयमाला में उल्लिखित यह जावालिपुर आधुनिक जालौर है, जो जोधपुर नगर से 75 मील दूर सुकरी नदी के बायें किनारे पर स्थित है। जालौर वर्तमान में भिल्लमाल से 33 किलोमीटर दूर भिलदी–रनिवार–समदरी रेल्वेलाइन का स्टेशन है। उद्द्योतनसूरि ने जावालिपुर को तुंग अलंघ अष्टापदम् व श्रावककुलम् विशेषण से युक्त कहा है। वर्तमान में जालौर नगर सोवनगिरि या सोनगिरि पहाड़ी की तलहटी में बसा है, जो प्राचीन अनुश्रुति के अनुकुल है।

**पाठ :**

1. अत्थि इमम्मि चेय लोए जंबूदीवे भारहे वासे वेयड्ढ–दाहिणमज्झिमखंडे उत्तरावहं णाम पहं। तत्थ तक्खसिला णाम णयरी। तीए य णयरीए पच्छिम–दक्खिणे दिसाभाए उच्चत्थलं णाम गामं, सग्गणयरं पिव सुरभवणेंहि, पायालं पिव विविहरयणेहिं, गोट्टंगणं पिव गो–संपयाए, धणयपुरीविय धण–संपयाए त्ति।

2. तम्मि गामे सुद्द–जाइओ धणदेवो णाम सत्थवाहउत्तो। तत्थ तस्स सरिस सत्थबाहउत्तेहिं सह कीलंतस्स बच्चए कालो। सो पुण लोहपरो अत्थगहण–तल्लिच्छो मायावी वंचओ अलियवयणो पर–दव्वावहारी। तओ तस्स एरिसस्स तेहिं सरिस–सत्थवाहजुवाणेहिं धणदेवो ति अवहरिउं लोहदेवो त्ति से पइट्टियं णामं। तओ कय–लोहदेवाभिहाणो दियहेसु वच्चंतेसु महाजुवा जोग्गो संवुत्तो।

3. तओ उद्धाइओ इमस्स लोभो बाहिउंपयत्तो, तम्हा भणिओ य णाण जणओ–'ताय! अहं तुरंगमे घेत्तूण दक्खिणावहं वच्चामि। तत्थ बहुयं अत्थं विढवेमो। जेण सुहं उवभुंजामो' त्ति।

4. भणियं च से जणएण–'पुत्त! केत्तिएण ते अत्थेण ? अत्थि तुहं महं पि पुत्त–पवोत्ताणं पि विउलो अत्थसारो। ता देसु किवणाणं, विभयसु वणीमयाणं, दक्खेसु बंभणे, कारावेसु देवउले, खाणेसु तलाय–बंधे, बांधावेसु वावीओ, पालेसु सत्तायारे, पयत्तेसु आरोग्ग–सालाओ, उद्धरेसु दीण–विहले त्ति। ता पुत्त! अलं देसंतर–गएहिं।'

5. भणियं च लोहदेवेणं–'ताय! जं एत्थ चिट्ठइ तं साहीणं चिय, अण्णं अपुव्वं अत्थं आहरामि बाहु–बलेणं ति।' तओ तेण चिंतियं सत्थवाहेणं–'सुंदरो चेय एस उच्छाओ। कायव्वमिणं, जुत्तमिणं, सरिसमिणं धम्मो चेय अम्हाणं जं अउव्वं अत्थागमणं कीरइ त्ति। ता ण कायव्वो मए इच्छा–भंगो, ता दे वच्चउ' ति चिंतिउं तेण भणिओ– 'पुत्त! जइ ण ट्ठायसि, तओ वच्च।'

6. एवं भणिओ पयत्तो। सज्जीकया तुरंगमा, सज्जियाइं जाण–वाहणाइं, गहियाइं पच्छयणाइ चित्तविया आडियत्तिया, संठविओ कम्मयरजणो, आउच्छिओ गरुयणो, वंदिया रोयणा, पयत्तो सत्थो, चलियाओ वलत्थाउ। तओ भणिओ सो पिउणा–'पुत्त! दूरं देसंतरं, विसमा पंथा, णिट्ठुरो लोओ, बहुए दुज्जणा, विरला सज्जणा, दुप्परियल्लं भंडं, दुद्धरं जोव्वणं, दुल्ललिओ तुमं, विसमा कज्जगई, अणत्थरुई कयंतो, अणवरद्ध–कुद्धा चोर त्ति। ता सव्वहा कहिंचि पंडिएणं कहिंचि मुक्खेण, दक्खिणेण, कहिंचि रिट्ठुरेण, कहिंचि दयलुणा कहिंचि णिक्किवेणं, कहिंचि सूरेणं, कहिंचि कायरेण कहिंचि चाइणा, कहिंचि किमणेणं, कहिंचि माणिणा, कहिंचि दींणेणं, कहिंचि वियड्ढेणं, कहिंचि जडेणं।' एवं च भणिऊण णियत्तो सो जणओ।

7. इमो वि लोहदेवो संपतो दक्खिणावहं केण वि कालं तरेण। समावासिओ सोप्पारए णयरे भद्दसेट्ठीणाम जुझणसेट्ठी तस्स गेहम्मि। तओ केण वि कालंतरेण महग्घ–मोल्ला दिण्णा ते तुरंगमा। विढत्तं महंतं अत्थसंचयं। तं च घेत्तूणं सदेसहुत्तंगंतुमणो सो सत्थवाहपुत्तो त्ति।*

* कुवलयमालाकहा, पृष्ठ 64–65।

## हिन्दी

इस लोक में जम्बूद्वीप में भारतवर्ष में वैताढ्य के दक्षिण मध्यम खण्ड में उत्तरापथ नामक पथ है। वहाँ तक्षशिला नामक नगरी है। उस नगरी के पश्चिम दक्षिण दिशाभाग में उच्चस्थल नामक गाँव है, जो देव भवनों से स्वर्ग नगर की तरह विविध रत्नों से पाताल की तरह, गौ–सम्पदा से गौओं के निवास–स्थान की तरह तथा धन सम्पदा से ध ानकपुरी की तरह है।

उस गाँव मैं शूद्र जाति का धनदेव नामक सार्थवाह (बड़े व्यापारी) का एक पुत्र था। वहाँ अपने जैसे सार्थवाह पुत्रों के साथ खेलते हुए उसका समय व्यतीत होता था। किन्तु वह लोभी, धन ग्रहण करने वाला था। तब उसके समान सार्थवाह युवकों के द्वारा ऐसे उसका धनदेव नाम बदलकर लोभदेव नाम प्रतिष्ठित कर दिया गया। तब लोभदेव नाम वाला वह दिनों के बीतने पर बड़े युवक की तरह हो गया।

तब बाहर जाने के लिए इसके लोभ उत्पन्न हुआ, इसलिए उसने अपने पिता से कहा – हे पिता ! घोड़े लेकर दक्षिणापथ को जाऊँगा और वहाँ बहुत अधिक धन कमाऊँगा, जिससे सुख का उपभोग करेंगे।'

BSER

ऐसा कहने पर उसके पिता ने कहा– 'हे पुत्र! तुम्हे धन से क्या प्रयोजन? तुम्हारे और मेरे पुत्र–पौत्रों के लिए भी विपुल सारयुक्त धन मेरे पास है। इसलिए गरीबों को दान दो, याचकों की माँग पूरी करो, ब्राह्मणों को दक्षिणा दो, मंदिरों को बनवाओ, तालाब और बाँध खुदवाओ, वापियों को बँधवाओ, निशुल्क भोजनशालाओं को चलाओ, औषधालयों को बनवाओ, दीन एवं विहवल लोगों का उद्धार करो, किन्तु हे पुत्र! विदेश जाने से रहने दो।'

तब लोभदेव ने कहा– हे पिता! जो यहाँ है वह तो अपने अधीन है ही। किन्तु अपनी बाहुओं के पुरुषार्थ से अन्य अपूर्ण धन कमाना चाहता हूँ। तब उस सार्थवाह ने सोचा– इसका उत्साह ठीक ही है। यह करने योग्य, उचित एवं हमारे अनुकूल है। हमारा धर्म ही है– अपूर्ण धन कमाना। इसलिए मुझे इसकी इच्छा को नहीं तोड़ना चाहिए। अतः यह जाये– ऐसा सोचकर उसने कहा– हे पुत्र! यदि तुम नहीं रुक सकते तो जाओ।

ऐसा कहे जाने पर वह जाने तैयार हो गया। घोड़े सजाये गये। गड़ीवान सज्जित की गयी, रास्ते का खाना रखा गया, दलालों को सूचना दी गयी, मजदूर लोगों को एकत्र किया गया, गुरूजनों से पूछा गया, दिशा – देवता की वन्दना की गयी, सार्थ तैयार हुआ और जल्दी से चल पड़ा तब उसके पिता ने उसे कहा – हे पुत्र ! देशान्तर दूर है, रास्ते भयानक हैं, लोग निष्ठुर हैं, दुर्जन अधिक हैं, सज्जन विरले हैं, मित्र कठिनता से मिलते हैं, यौवन कठिन है, बडी मुश्किल से तुम पाले गये हो, कार्यो की गति विषम है यौवन कठिन है, बड़ी मुश्किल से तुम पाले गये हो, कार्यो की गति विषम है, यमराज अनर्थ करने वाला है, क्रोधी चोर निरन्तर मिलते हैं। इसलिए कहीं पर पण्डिताई से, कहीं पर मूर्खता से, कहीं चतुरता से, कही नि   ठुरता से कही दयालुता से, कहीं निर्दयता से कहीं शूरता से, कहीं कायरता से कहीं त्याग से कहीं कंजूसी से, कहीं कान से, कहीं दीनता से, कहीं बुद्धिमानी से और कहीं मूर्खता से (अपना कार्य सिद्ध करना)। ऐसा कहकर वह पिता वापिस लौट गया।

वह लोभदेव किसी समय के बाद दक्षिणापथ को पहुँचा। वहाँ सोपारक नगर में भद्रश्रेष्ठि नामक पुराने सेठ के घर में वह ठहरा। तब कुछ समय के बाद उसने अत्यधिक मोल से उन घोड़ो को बेच दिया। उससे बहुत अधिक धन का संचय किया। और उसको लेकर अपने देश की ओर वह सार्थवाह–पुत्र जाने को तैयार हो गया।

BSER

## अभ्यास

**शब्दार्थ :**

| | | |
|---|---|---|
| सग्ग–स्वर्ग | धणय–कुबेर | सुद्दजाइ–शूद्र जाति |
| तल्लिच्छ–तल्लीन | अलिय–झूठ | पइट्ठियं–रख दिया |
| उद्दाइओ–उत्पन्न करना | पवोत–प्रपौत्र | खाण–खुदाना |
| आउयत्तिय–दलाल | कयंत–यमराज | णियत्त–लौटना |

## लघुत्तरात्मक प्रश्न :

**प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :**

1. धनदेव का नाम लोभदेव क्यों रखा गया ?
2. धनदेव के पिता ने उसे विदेश जाने से क्यों रोका ?
3. अन्त में पिता ने क्या सोचकर धनदेव को अनुमति दे दी ?

## निबन्धात्मक प्रश्न :

(क) धनदेव के पिता ने किन कार्यों में धन खर्च करने के लिए कहा था ?

(ख) विदेश जाते समय धनदेव को उसके पिता ने क्या शिक्षा दी थी ?

(ग) धनदेव कहाँ गया और उसने कैसे धन कमाया ?

BSER

# 5. जहा गुरू तहा सीसो (रयणचूड़रायचरियम्)

**पाठ परिचय :**

नेमिचन्द्रसूरि ने उत्तराध्ययनसुखबोधाटीका आदि ग्रन्थों के अतिरिक्त लगभग 11वीं शताब्दी में चन्द्रवती नगरी (राज.) में रयणचूडरायचरियं नामक चरितग्रन्थ भी लिखा है। इस ग्रन्थ में रत्नचूड राजा के पूर्व–जन्म एवं जीवन–चरित आदि का वर्णन है। प्रसंगवश अन्य लौकिक कथाएं भी हैं।

यह कथा स्वप्न की सत्यता का निराकरण करने के लिए कही गयी है। एक मठ के आचार्य ने स्वप्न में मठ के कमरों को मिष्ठान से भरा हुआ देखा। नींद खुलने पर उन्होंने यह बात अपने शिष्य से कही। उस शिष्य ने स्वप्न के मिष्ठान्न को खिलाने के लिए सारे गांव को निमन्त्रण कर दिया। अन्त में लोगों के सामने उन्हें अपनी मूर्खता पर अपमानित होना पड़ा।

**पाठ :**

1. एगम्मि गामे बहु–वक्खारिगे मढे एग–सीसेण संजुओ परमायरिओ वसइ। अन्नया तेण रयणीए सुविणे दिट्ठा–मोयगपडिपुन्ना वक्खारिगा। विउद्धेण संहरिसं साहियं चेल्लगस्स। तेण भणियं–'जइ एवं ता निमंतेमो अज्ज गामं। भुत्तपुव्वं बहुसो गामगिहेसु।'

2. एवं ति पडिवन्ने गंतूण उक्कुरुडियाए निमंतिओ सठक्कुरो गामो चिल्लगेण। 'कत्थ तुम्ह भोयणसामग्गि,' त्ति ? अणिच्छन्तो वि धम्माणुभवेण सव्वं भविस्सइ' त्ति बला मन्नाविओ। काराविओ भोयणमंडवो ठावियाओ आसणपंतीओ। उचियवेलाए समागओ गामलोओ। उवविट्ठो आसणेसु दिन्नाइं भायणाइं।

3. एत्थंतरे पविट्ठो मोयगनिमित्तमब्भन्तरे परसमायरिओ। जाव न किंचि तत्थ पेच्छइ। तओ 'अदन्नचित्तो भुल्लो अहं मोयगवक्खारियाए, तो पुणो वि तद्दंसणात्थं सुवामि। तं पुण लोगरोलं निवारेहि' त्ति भणिऊण चेल्लयं सो पसुत्तो।

4. एत्थंतरे लोएहिं भणियं–'छुहाइओ जणो, उस्सूरं च वट्टइ ता किं चिरावेह ?' चेल्लिएण भणियं–'मा रोलं करह, जा मे गुरु निद्दं लहइ त्ति।' तेहिं भणियं–'को सुवणकालो ?' चेल्लिएण भणियं–'तुम्ह भोयणट्ठा सुविणोवलद्धमोयगवक्खारिगाए भुल्लो, पुणो तद्दंसणत्थं सुवइ' त्ति।

5. एवं सोऊण–'अहो मुरुक्खा एए' त्ति दिन्न करतालो हसमाणो गओ लोगो सभवणेसु। ता न सुविणयं दिट्ठं पारमत्थियं ति।*

* रयणचूडरायचरियं (सं.–विजयकुमुदसूरि), खम्भात, 1942, पत्र 28 से साभार।

## हिन्दी

एक गाँव में बहुत से कोठों से युक्त एक मठ मैं एक शिश्य के साथ बड़ा आचार्य रहता था। एक बार उसने रात्रि में स्वप्न देखा कि– मठ के सभी कोठे (बखरी) लड्डुओं से भरे हुए हैं। जगने पर उसने प्रसन्नतापूर्वक यह बात अपने शिष्य से कही। उसने कहा– 'यदि ऐसा है तो आज हम पूरे गाँव को निमन्त्रण कर देते हैं। गाँव के घरों में हमने बहुत बार खाया है।'

'ठीक है' स्वीकार करने पर घूरे पर जाकर उस चेले ने मुखिया समेत पूरे गाँव को निमन्त्रण दे दिया। 'तुम्हारे

BSER

यहाँ भोजन सामग्री कहाँ से आयी ? ऐसा पूछे जाने पर भी धर्म प्रभाव से सब होगा' ऐसा कहकर शिष्य द्वारा बलपूर्वक उन्हें मना लिया गया। भोजन का मण्डप बनवाया गया। आसन– पंक्तियाँ बिछायी गयीं। उचित समय पर गाँव के लोग भी आ गये। आसनों पर बैठ जाने पर उन्हे भोजन–पात्र भी दे दिये गये।

इसी समय में वह परम आचार्य लड्डुओं के लिए भीतर घुसा। किन्तु वहाँ कुछ भी नहीं देखता है। तब चित न लगने से मैं लड्डुओं वाले कमरे को भूल गया हूँ। अतः देखने के लिए फिर सो जाता हूँ। तब तक तुम लोगों के शोरगुल को रोकना।' चेला को ऐसा कहकर वह आचार्य सो गया।

इस बीच में लोगों ने कहा– 'लोग भूखे हैं, शाम हो रही है अतः देर क्यों की जा रही हैं ? चेले ने कहा – 'शोर मत करो, क्योंकि मेरे गुरू नींद ले रहे हैं।'

ऐसा सुनने पर लोगों ने कहा – 'यह सोने का कौन–सा समय है?' चेले ने कहा– 'आप लोगो के भोजन के लिए स्वप्न में देखे गये लड्डुओं का कोठा गुरूजी भूल गये थे। अतः फिर से उसे देखने के लिए अब सो गये है। ऐसा सुनकर– अहो ! इनकी मूर्खता? ऐसा कहकर ताली बजाते हुए हँसते हुए लोग अपने घरों को चले गये। इसलिए स्वप्न में देखा हुआ स्थायी नहीं होता।

BSER

**अभ्यास**

**शब्दार्थ :**

| | | |
|---|---|---|
| बक्खारिग–कोठा | सुविण–स्वप्न | बिउद्ध–जागना |
| साह–कहना | चेल्लग–चेला | उक्कुरुडिया–घूरा |
| बला–वलपूर्वक | भायण–बर्तन | सुव–सोना |
| रोलं–शोरगुल | उस्सूर–सन्ध्या | मुरुक्खा–मूरख |
| करताल–ताली | एए–ये लोग | दिट्ठं–देखा हुआ |

**लघुत्तरात्मक प्रश्न :**

**प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :**

1. इस पाठ का मूल उद्देश्य क्या है ?
2. गांव के लोगों के लिए भोजन–सामग्री कहाँ थी ?
3. गांव के लोगों के आ जाने पर मठ का गुरु क्यों सो गया ?
4. असलियत जानने पर लोगों ने क्या कहा ?

4. (ख)

# प्राकृत पद्य संग्रह

# (पाइय पज्ज–संगहो)

BSER

## पाठ –1

## कुमाराण बुद्धि–परिक्खणं

**पाठ–परिचय :**

आख्यानकमणिकोश में बुद्धि की परीक्षा के लिए अभयकुमार का आख्यान दिया गया है। प्राकृत कथा साहित्य में राजा प्रसेनजित के पुत्र श्रेणिक या बिम्बसार की योग्यता का बहुत वर्णत मिलता है। इस राजा श्रेणिक का विवाह सुनन्दा के साथ होता है। उन दोनों के जो पुत्र होता है उसका नाम अभयकुमार है। अभयकुमार से सम्बन्धित कई कथाएँ प्राकृत में हैं। आख्यानकमणिकोश में 278 गाथाओं में अभयकुमार का कथानक वर्णित है।

डॉ. के. आर. चन्द्रा ने अभयक्खाणयं नामक पुस्तक में अभयकुमार के कथानक को संक्षेप में प्रस्तुत किया है। उसी में से प्रसेनजित राजा द्वारा अपने पुत्रों की बुद्धि की परीक्षा लेने का प्रसंग इन गाथाओं में यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

**अह अन्नया कयाई रयणीए पच्छिमम्मि जामम्मि।**
**सुहसंबुद्धो चिंतिउमारद्धो नरवई एवं।।1।।**

**मज्झ कुमराण मज्झे होही को धरधुराधरणधीरो।**
**सेसो व महाभोगो चूडामणिरंजियसिरग्गो।।2।।**

**इय चिंतिऊण सिंधुर–तुरंगमाउज्ज–रहवराइन्नं।**
**पज्जालावइ सयलं चउद्दिसिं जिन्नसालगिहं।।3।।**

**तं नियवि जलणजालाकरालियं भणइ भूवई कुमरे।**
**रे रे ! जो जं गेण्हइ दिन्नं तं तस्स सव्वं पि।।4।।**

**रायाएसं निसुणिउ तड–यड–फुट्टंतवंससंदोहे।**
**कड्ढन्ति पलित्ते पविसिऊण कुमरा गइंदाई।।5।।**

**सेणिय–कुमरेण पुणो पविसिय पजलंतमंदिरस्संतो।**
**गहिया भिंभाभिहाणा दक्खेण झडत्ति जयढक्का।।6।।**

BSER

तं मच्छरेण करकलियभिंभमवलोइउं इयरकुमरा।
उवहासेण पयंपन्ति सेणियं भिंभसारो त्ति।।7।।

तं दट्ठूण नरिंदेण चिंतियं सेणिएण साहु कयं।
पढममिणं रज्जंगं संगहिया जेण जयढक्का।।8।।

अह अन्नया परक्कम–चाय–परिक्खणकए कुमाराण।
काराविय परमन्नं भोएइ निवो नियकुमारे।।9।।

परमन्नं परिवेसिय निवेण लिल्लिक्किओ सुयणवग्गो।
सम्मुहमागच्छंतं तं नियवि पलाइया इयरे।।10।।

सेणियकुमरो इयराणमुभयपासट्ठिए गहियथाले।
सुणयाण खिवइ जेमेइ अप्पणा भयविमुक्कमणो।।11।।

तव्वइयरमवलोइय चिंतेइ पमोइओ पुहइपालो।
एसो उदारवीरो त्ति कायरा इयरकुमरा मे।।12।।

अवर समयम्मि राया बुद्धि–परिक्खणकए कुमाराण।
मुद्देइ गणिय–लड्डुय–करंडए सलिलकलसे य।।13।।

हक्कारिउं तओ ते भणेइ वच्छ! सबुद्धिविहवेण।
मुद्दमभंजिय भुंजेह मोयगे पियह सलिलं पि।।14।।

एवं वुत्ता नियबुद्धिगव्विया वि य उवायमलभंता।
ते छुह–पिवाससोसियगत्ता दीणत्तमणुपत्ता।।15।।

सेणिय कुमरेण पुणो घेत्तुं पगलंत–कलसबिंदुजलं।
धुणिउं करंडए मोयगाण चूरीए भोयविया।।16।।

इय निसुणिऊण सेणियमइविहवं विम्हिओ महाराओ।
चिंतेइ जहा जुत्तो एसो रज्जाहिसेयस्स।।17।।

## हिन्दी

1. इसके बाद एक बार कभी रात्रि के अन्तिम पहर में सुखपूर्वक जगा हुआ राजा (प्रसेनजित) इस प्रकार सोचने लगा।

2. मेरे राजकुमारों के बीच में कौन (राजकुमार) चूड़ामणि से सुशोभित फण के अग्रभाग वाले महानागशेष की तरह पृथ्वी की धुरा को धारण करने में समर्थ होगा?

3. ऐसा सोचकर हाथी, घोड़े, शस्त्र, रथ आदि से भरे हुए सम्पूर्ण पुराने शस्त्रागार को उसने चारों दिशाओं से आग लगवा दी।

4. उस अग्नि की भयंकर ज्वाला को देखकर राजा राजकुमारों को कहता है– 'अरे राजकुमारों ! (इस आग में से) जो (कुमार) जो कुछ भी प्राप्त करता है वह सब उसे दे दिया जायेगा।'

5. राजा के आदेश को सुनकर राजकुमार तड़–तड़ की आवाज करते हुए, जलते हुए बांसों के उस घर में घुसकर हाथी आदि को निकाल लेते हैं।

6. किन्तु राजकुमार श्रेणिक के द्वारा जलते हुए उस मकान के भीतर प्रवेशकर शीघ्र ही चतुरता से बिम्ब नामक जयढक्का (नगाड़ा) प्राप्त कर ली गयी।

7. दूसरे राजकुमार मजाक में उपहास करते हुए हाथ में ली हुई (उस) बिम्ब (नगाड़ा) वाले श्रेणिक को 'बिम्बसार' कहते हैं।

8. इसको देखकर राजा ने सोचा– 'श्रेणिक के द्वारा अच्छा किया गया है जो कि राज्य के इस प्रथम अंग जयढक्का को प्राप्त किया गया।'

9. इसके बाद (कभी) एक बार राजकुमारों के पराक्रम, त्याग की परीक्षा करने के लिए राजा पकवान बनवाकर अपने कुमारों को भोजन करवाता है।

10. पकवान परोसकर राजा के द्वारा कुत्तों के झुण्ड को (वहाँ) बुलवाया गया। दूसरे (राजकुमार) उनको आता हुआ देखकर भाग गये।

11. किन्तु कुमार श्रेणिक दोनों बगलों में स्थित दूसरे राजकुमारों की थालियों को लेकर कुत्तों के लिए फेंक देता है और भय से रहित मनवाला (वह) स्वयं की थाली जीमता रहता है।

12. उस वृतान्त को देखकर आनन्दित हुआ राजा सोचता है– 'यह (श्रेणिक) उदार है और वीर है (तथा) मेरे अन्य राजकुमार कायर हैं।'



BSER

13. किसी दूसरे अवसर पर राजकुमारों की बुद्धि की परीक्षा करने के लिए (राजा) गिने हुए लड्डुओं की टोकरियों और पानी के कलशों को सीलबन्द करा देता है।

14. तब उन (राजकुमारों) को बुलवाकर कहता है– 'हे पुत्र ! अपनी बुद्धि के वैभव से सील तोड़कर लड्डुओं को खाओ और पानी को भी पिओ।'

15. ऐसा कहे गये अपनी बुद्धि के घमण्डी वे (राजकुमार) उपाय को न प्राप्त करते हुए भूख–प्यास से सूखे शरीर वाले (होकर) दीनता को प्राप्त हुए।

16. किन्तु श्रेणिक कुमार के द्वारा कलशों से झरती हुई बूंदों के जल को लेकर और टोकरियों को हिलाकर (उनसे गिरी हुई) लड्डुओं की चूरी से भोजन कर लिया गया।

17. श्रेणिक की बुद्धि के वैभव को इस प्रकार सुनकर आश्चर्य युक्त महाराजा सोचता है कि राज्याभिषेक के लिए यह (श्रेणिक) योग्य है।

'''

**अभ्यास**

**1. शब्दार्थ :**

| | | |
|---|---|---|
| जाम | = | पहर |
| महाभोगो | = | महानाग |
| आइन्नं | = | भरा हुआ |
| जिन्न | = | पुराना |
| नियवि | = | देखकर |
| झडत्ति | = | शीघ्र |
| मच्छरेण | = | ईर्ष्या से |
| इणं | = | यह |
| रज्जंग | = | राज्य के अंग |
| चाय | = | त्याग |
| भोएइ | = | भोजन करता है |
| पासट्ठिए | = | पास में स्थित |
| सुणयं | = | कुत्ता |
| वइयरं | = | वृत्तान्त |

BSER

| | | |
|---|---|---|
| पमोइओ | = | आनन्दित |
| पगलंत | = | झरते हुए |
| करंड | = | टोकरी |
| विम्हिओ | = | आश्चर्यचकित |

**2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –**

| **(क) शब्दरूप** | **मूलशब्द** | **विभक्ति** | **वचन** | **लिंग** |
|---|---|---|---|---|
| रयणीए | रयणी | षष्ठी | ए.व. | स्त्री. |
| मराण | ......... | ......... | ......... | ......... |
| उवहासेण | ......... | ......... | ......... | ......... |
| करंडए | ......... | ......... | ......... | ......... |

| **(ख) संधिवाक्य** | **विच्छेद** | **संधिकार्य** |
|---|---|---|
| चिंतिउमारद्धो | चिंतिउं + आरद्धो | अनुस्वार को म |
| रायाएसं | ..... + ....... | ............ |
| मन्दिरस्संतो | मंदिरस्स + अंतो | अ+अ = अ |
| भिंभाभिहाणा | ..... + ....... | ............ |
| पढमभिणं | ..... + ....... | ............ |

| **(ग) समासपद** | **विग्रह** | **समासनाम** |
|---|---|---|
| सुहसंबुद्धो | सुहेण + संबुद्धो | तृतीया तत्पुरुष |
| धरधुरा | ..... + ....... | ............ |
| भयविमुक्कमणो | ..... + ....... | ............ |
| उदारवीरो | ..... + ....... | ............ |
| सलिलकलसे | ..... + ....... | ............ |

| **(घ) क्रियारूप** | **मूल क्रिया** | **काल** | **पुरुष** | **वचन** |
|---|---|---|---|---|
| भणइ | भण | वर्तमान | अ.पु. | ए.व. |
| कड्ढन्ति | ......... | ......... | ......... | ......... |
| भुजेह | ......... | ......... | ......... | ........ |
| पियह | ......... | ......... | ......... | ......... |

BSER

**(ङ)**

| कृदन्त | मूलक्रिया | अर्थ | पहिचान | प्रत्यय |
|---|---|---|---|---|
| दिन्न | अनियमित | दे दिया गया | भूतकाल | |
| निसुणिउ | निसुण | सुनकर | सम्बन्ध | इ+उ |
| फुट्टंत | फुट्ट | आवाज करते हुए | वर्तमान | न्त |
| परिवेसिय | परिवेस | रोसकर | सं. कृ. | इ+य |

**3. वस्तुनिष्ठ प्रश्न**

**सही उत्तर का क्रमांक कोष्ठक में लिखिए –**

1. श्रेणिककुमार ने जलते हुए घर में से निकाला –

(क) रथ को (ख) हाथी को

(ग) शास्त्र को (घ) भिंभसार जयढक्का को ( )

2. खीर खाते समय कुमारों के पास राजा ने –

(क) सैनिकों को भेजा (ख) कुत्तों के झुण्ड को बुलवाया

(ग) और भोजन भिजवाया (घ) नौकरों को भेजा ( )

**4. लघुत्तरात्मक प्रश्न –**

**प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए –**

1. कुत्तों के आक्रमण पर श्रेणिक ने क्या किया?
2. श्रेणिक ने लड्डू कैसे खाये?
3. राजा ने राज्याभिषेक के लिए श्णिक को क्यो चुना?

**5. निबन्धात्मक प्रश्न एवं विशदीकरण :**

(क) राजकुमारों की परीक्षाओं का वर्णन 8–10 पंक्तियों में कीजिए।

(ख) इस पाठ की शिक्षा अपने शब्दों में लिखिए।

(ग) गाथा नं. 8 अथवा 11 का अर्थ संदर्भ सहित समझाकर लिखिए।

BSER

# पाठ –2

## सहलं मणुजम्मं

**पाठ–परिचय :**

प्राकृत भाषा में ऐसे व्यक्तियों के जीवन–चरितों का वर्णन हुआ है, जिन्होंने अच्छे कार्यों के द्वारा अपने जीवन को श्रेष्ठ बनाया है। ऐसे काव्यों को चरितकाव्य कहा गया है। प्राकृत में लगभग तीसरी–चौथी शताब्दी में विमलसूरि ने 'पउमचरिय' नामक प्रथम चरितकाव्य लिखा, जिसमें मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र के जीवन का वर्णन है। इसके बाद कई चरितकाव्य लिखे गये हैं। लगभग 15वीं शताब्दी में **अनन्तहंस ने कुम्मापुत्तचरियं** नामक ग्रन्थ लिखा है। इस चरितकाव्य में राजा महेन्द्र सिंह और रानी कुर्मा के पुत्र धर्मदेव के पूर्वजन्मों एवं वर्तमान जन्म की कथा वर्णित है।

धर्मदेव को एक साधु पुरुष मनुष्य–जन्म का महत्त्व बतलाता है। वह कहता है कि मनुष्य–जन्म अन्य पशु, पक्षी आदि के जन्म से कई अर्थों में श्रेष्ठ है। अतः इस मनुष्य जन्म में आकर अच्छे कार्य करना चाहिए। इस जन्म को व्यर्थ के कार्यों में गंवाना ठीक नहीं है। इस बात की पुष्टि के लिए वणिक्पुत्र का उदाहरण दिया गया है।

कोई वणिक्पुत्र बड़ी कठिनाई और परिश्रम के बाद एक चितामणिरत्न को विदेश में जाकर प्राप्त करता है। यह रत्न मनवाँछित फल को देने वाला है। जब वह वणिक्पुत्र जहाज से समुद्र पार कर रहा था तब रात्रि में चन्द्रमा के प्रकाश और रत्न के प्रकाश की वह तुलना करने लगता है। इसके लिए वह हाथ में रत्न को लेकर देख रहा था कि रत्न फिसलकर समुद्र में गिर गया और बहुत खोजने पर फिर नहीं मिला। इसी प्रकार मनुष्य–जन्म को यदि अच्छे कार्यों से सफल नहीं किया तो वह भी व्यर्थ चला जाता है।

**एगम्मि नयरपवरे अत्थि कलाकुसलवाणिओ को वि।**
**रयणपरिक्खागंथं गुरूण पासम्मि अब्भसइ।।1।।**

**अह अन्नया विचिंतइ सो वणिओ किमवरेहि रयणेहिं।**
**चिंतामणी मणीणं सिरोमणी चिंतिअत्थकरो।।2।।**

**तत्तो सो तस्स कए खणेइ खाणीओ णेगठाणेसुं।**
**तह वि न पत्तो स मणी विविहेहिं उवायरकणेहि।।3।।**

केण वि भणिअं वच्चसु वहणे चडिऊण रयणदीवंमि।
तत्थत्थि आसपूरी देवी तुह वंछियं दाही।।4।।

सो तत्थ रयणदीवे संपत्तो इक्कवीस–खवणेहिं।
आराहइ तं देविं संतुट्ठा सा इमं भणइ।।5।।

भो भद्द केण कज्जेण अज्ज आराहिआ तए अहयं।
सो भणइ देवि चिंतामणिकए उज्जमो एसो।।6।।

दत्तं चिंतारयणं तो तीए तस्स रयणवणिअस्स।
सो निअगिहगमणत्थं संतुट्ठो वाहणे चडिओ।।7।।

पोअपएसनिविट्ठो वणिओ जा जलहिमज्झमायाओ।
ताव य पुव्वदिसाए समुग्गओ पुण्णिमाचन्दो।।8।।

तं चंदं दट्ठूणं नियचित्ते चिंतए स वाणियओ।
चिंतामणिस्स तेअं अहिअं अहवा मयंकस्स।।9।।

इअ चिंतिऊण चिंतारयणं निअकरतले गहेऊणं।
नियदिट्ठीइ निरक्खइ पुणो पुणो रयणमिंदुं य।।10।।

इअ अवलोअंतस्स य तस्स अभग्गेण करतलपएसा।
अइसुकुमालमुरालं रयणं रयणायरे पडिअं।।11।।

जलनिहिमज्झे पडिओ बहु बहु सोहंतएण तेणावि।
किं कह वि लब्भइ मणी सिरोमणी सयलरयणाणं।।12।।

तह मणुअत्तं बहुविहभवभमणसएहि कहकह वि लद्धं।
खणमित्तेणं हारइ पमायभरपरवसा जीवो।।13।।

,,,

## हिन्दी

1. किसी एक श्रेष्ठ नगर में कलाओं में कुशल कोई (एक) व्यापारी था। (वह) गुरुओं के पास में रत्न–परीक्षा ग्रन्थ का अभ्यास करता है।

2. इसके बाद किसी एक दिन वह व्यापारी सोचता है कि अन्य रत्नों से क्या (लाभ)? मणियों में शिरोमणि, सोचने मात्र से धन देने वाला चिन्तामणि (रत्न) है।

3. तब से वह उसके लिए अनेक स्थानों में खानों को खोदता है। फिर भी विभिन्न उपायों को करने से भी वह चिन्तामणि उसे प्राप्त नहीं होता है।

4. किसी ने (उसे) कहा– जहाज पर चढ़कर रत्नद्वीप में जाओ। वहाँ आशपुरी देवी है। (वह) तुम्हे इच्छित (फल) देगी।'

5. वहाँ रत्नद्वीप में इक्कीस दिनों में पहुँचा हुआ वह उस देवी की आराधना करता है। संतुष्ट हुई वह (देवी) इस प्रकार (उसे) कहती है–

6. 'हे भद्र ! तुम्हारे द्वारा आज मैं किस कार्य से पूजी गयी हूँ ?' वह कहता है– 'हे देवि ! यह प्रयत्न चिन्तामणि रत्न के लिए है।'

7. तब उस (संतुष्ट) देवी के द्वारा उस रत्न–व्यापारी को चिन्तामणि रत्न दे दिया गया। संतुष्ट हुआ वह (व्यापारी) अपने घर जाने के लिए जहाज पर चढ़ गया।

8. जहाज के एक स्थान पर बैठा हुआ (वह) व्यापारी जब समुद्र के बीच में आया तभी पूर्व दिशा में पूर्णिमा का चाँद निकल आया।

9. उस चाँद को देखकर वह व्यापारी अपने मन में सोचता है– 'चिन्तामणि रत्न का प्रकाश अधिक है अथवा चन्द्रमा का ?'

10. ऐसा सोचकर (वह) अपनी हथेली में चिन्तामणि रत्न को लेकर आँख से बार–बार रत्न और चन्द्रमा का निरीक्षण करता है।

11. और उसके दुर्भाग्य से इस प्रकार देखते हुए हथेली–प्रदेश से अत्यन्त छोटा और चमकदार वह रत्न समुद्र में गिर गया।

BSER

12. उस (व्यापारी) के द्वारा बार–बार खोजे जाने पर भी समुद्र के बीच में गिरा हुआ समस्त रत्नों का शिरोमणि (वह) चिन्तामणि क्या किसी प्रकार प्राप्त हो सकता है? (नहीं)।

13. उसी प्रकार बहुत प्रकार के सैकड़ों जन्मों में भ्रमण के द्वारा किसी–किसी प्रकार से प्राप्त मनुष्य–जन्म को जीव असावधानी (प्रमाद) से परवश होकर क्षणमात्र में खो देता हैं।

**अभ्यास**

**1. शब्दार्थ :**

| | | |
|---|---|---|
| वहण | = | जहाज |
| खवण | = | दिन |
| ठाण | = | स्थान |
| गंथ | = | ग्रन्थ |
| पोअ | = | जहाज |
| जलहि | = | समुद्र |
| अहयं | = | मैं |
| पएस | = | प्रदेश |
| अवर | = | श्रेष्ठ |
| णेग | = | अनेक |
| सुर | = | देवता |
| ताव | = | तभी |
| निअ | = | अपने |
| वणिओ | = | व्यापारी |
| करतल | = | हथेली |
| मयंक | = | चन्द्रमा |
| रयणायर | = | समुद्र |
| पमाय | = | असावधानी |

**2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –**

**(क)**

| शब्दरूप | मूलशब्द | विभक्ति | वचन | लिंग |
|---|---|---|---|---|
| गुरूण | गुरु | षष्ठी | ब.व. | पु. |
| रयणेहिं | .......... | .......... | .......... | .......... |
| ठाणेसु | .......... | .......... | .......... | .......... |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| केण | .......... | .......... | .......... | .......... |
| देविं | .......... | .......... | .......... | .......... |
| धणाणि | .......... | .......... | .......... | .......... |

**(ख)**

| **संधिवाक्य** | **विच्छेद** | **संधिकार्य** |
|---|---|---|
| किमवरेहि | किं + अवरेहि | अनुस्वार को म |
| चिंतिअत्थकरो | चिंतिअ+अत्थकरोएक | अ का लोप |
| कम्ममेव | ......+....... | ................ |
| कम्माणुसारेण | ......+....... | ................ |
| जेणप्पन्ति | जेण + अप्पन्ति | ................ |
| रयणमिदु | ......+....... | .......................... |

**(ग)**

| **समासपद** | **विग्रह** | **समास नाम** |
|---|---|---|
| कलाकुसलवणिओ | कलासु+कुसलवणिओ | सप्तमी तत्पुरुष |
| रयणपरिक्खागंथं | रयणस्स+परिक्खागंथं | षष्ठी तत्पुरुष |
| पुव्वदिसा | पुव्वं + दिसा | बहुब्रीही |

**(घ)**

| **क्रियारूप** | **मूलक्रिया** | **काल** | **पुरुष** | **वचन** |
|---|---|---|---|---|
| अब्भसइ | अब्भस | वर्तमान | अ.पु. | ए.व. |
| खणेइ | ...... | ...... | ...... | ...... |
| वच्चसु | वच्च | आज्ञा | म.पु. | ए.व. |
| दाही | दा | भविष्य | अ.पु. | ए.व. |

**(ङ)**

| **कृदन्त** | **अर्थ** | **पहिचान** | **मूलक्रिया** | **प्रत्यय** |
|---|---|---|---|---|
| आराहिआ | पूजा की गई | भू.कृ. | आराह | इ+अ |
| गहेऊण | ग्रहण कर | सं.कृ. | गहि | इ+(ए) ऊण |
| पडिअं | गिर गया | भू.कृ. | पड | इ+अ |
| संपत्तो | पहुँचा | भू.कृ. | संपत्त | अ |

**3. वस्तुनिष्ठ प्रश्न–**

सही उत्तर का क्रमांक कोष्ठक में लिखिए –

1. व्यापारी ने प्राप्त करना चाहा था–

(क) जहाज     (ख) धनसम्पत्ति

(ग) चिंतामणि रत्न     (घ) ग्रन्थ     ( )

BSER

2. वह जहाज पर चढ़कर गया –

(क) उज्जैनी (ख) श्रीलंका

(ग) समुद्र (घ) रत्नद्वीप ( )

**4. लघुत्तरात्मक प्रश्न –**

**प्रश्नों के उत्तर एक वाक्य में लिखिए –**

1. व्यापारी को देवी ने क्या कहा ?
2. समुद्र के बीच में व्यापारी क्या सोचने लगा ?
3. समुद्र में रत्न क्यों गिर गया ?

**5. निबन्धात्मक प्रश्न एवं विशदीकरण –**

(क) चिन्तामणिरत्न और मनुष्य जन्म की तुलना 5–7 वाक्यों में कीजिए।

(ख) पाठ का सार अपने शब्दों में लिखिए।

(ग) गाथा नं. 2 एवं 13 का अर्थ संदर्भ सहित समझाकर लिखो।

BSER

## पाठ –3

# कुसलो पुत्तो

**पाठ–परिचय :**

आख्यानकमणिकोश में से एक व्यापारी के तीन पुत्रों की कथा यहाँ प्रस्तुत की जा रही है। इस कथा में नयसार नामक व्यापारी एक दिन विचार करता है कि उसके तीन पुत्रों में से कुटुम्ब के मुखिया का पद सम्हालने वाला कौन पुत्र होगा? अतः उनकी बुद्धि और लगन की परीक्षा के लिए वह उन्हें एक–एक लाख रुपये व्यापार के लिए देता है। एक वर्ष के समय के भीतर जो पुत्र उन रुपयों का जैसा उपयोग करता है, उसको वैसा ही काम सौंपा जाता है।

यह कथा प्रतीक कथा है, जो यह बतलाती है कि कुल की इज्जत को सुरक्षित रखते हुए उसे और आगे बढ़ाने का प्रयत्न करने वाला पुत्र ही कुशल पुत्र होता है। जो ऐसा नहीं करता उसे कठोर परिश्रम वाला कार्य करना पड़ता है और दूसरे के अधीन रहना होता है।

**नयरम्मि वसन्तपुरे नायरयजणाण गोरवट्ठाणं।**
**निवसइ सुइववहरणो नयसारो नाम पुरसेट्ठी।।1।।**

**अह अन्नया य को किर कुडुम्ब–पय–समुचिओ महं होही।**
**इय चिंताए तिण्हं पुत्ताण परिक्खणनिमित्तं।।2।।**

**निय–सयण–बन्धु–पमुहं नायरयजणं निमंतिउं गेहे।**
**भोयाविऊण विहिणा तस्स समक्खं भणइ सेट्ठी।।3।।**

**एएसि मह सुयाणं तिण्हं पि हु को कुडुम्ब–पय–जोगो।**
**तं चेव विसेसेणं जाणसि जोगो त्ति तेणुत्तं।।4।।**

**इय एवं ता तुम्हं समक्खमेए अहं परिक्खेमि।**
**इय भणिउं वाहरिया तिन्नि वि ते पउर–पच्चक्खं।।5।।**

**पत्तेयं पत्तेयं लक्खं दाऊण दविणजायस्स।**
**ववहारत्थं देसेसु पेसिया तस्स समक्खमिमे।।6।।**

BSER

तो तेसि पुत्ताणं चिंतियमेगेणमम्हमेस पिया।
पाएण दीहदरिसी धम्मपिओ सुइ–समायारो।।7।।

पाणच्चए वि अम्हाणमुवरि न कयावि चिंतइ विरूवं।
केणावि कारणेणं ता नूणं एत्थ भवियव्वं।।8।।

इय परिभाविय तहियं तह कहवि हु नियमईए ववहरियं।
जह विढविऊण कोडी वरिसन्ते पूरिया तेण।।9।।

बीएण चिंतियमिमं मम पिउणो विज्जए पभूय धणं।
ता किं किलेसजाले पाडेमि मुहाए अप्पाणं।।10।।

जइ सव्वं पि य विलसामि ता गओ कह मुहं पयंसिस्सं।
तम्हा मूलं रक्खिय सेसं भक्खेमि किं बहुणा।।11।।

तइएणमजोगत्ता विगप्पियं नियमणम्मि मह जणओ।
वुड्ढत्तणदोसेहिं संपइ कोडिकओ जम्हा।।12।।

तिट्ठा लज्जानासो भयबाहुल्लं विरूवभासित्तं।
पाएण मणुस्साणं दोसा जायन्ति वुड्ढत्ते।।13।।

अन्नह कहमम्हे पट्ठवेइ देसंतरम्मि सइ विहवे।
इय परिभाविय सव्वं वरिसंते भक्खियं दव्वं।।14।।

संपत्ता सव्वे वि हु नियसमए वन्नियस्सरूवा ते।
पुणरवि तहेव विहिऊण सेट्ठिणा भोयणाईयं।।15।।

सयणाईण समक्खं पढमो संठाविओ कुडुम्बपए।
बीओ भण्डारपए तइओ किसिमाइकज्जेसु।।16।।

,,,

## हिन्दी

1. वसन्तपुर नगर में न्यायप्रिय लोगों में गौरव का स्थानरूप, अच्छे व्यवहार वाला नयसार नामक नगर–सेठ रहता था।

2–3. एक बार 'मेरे कुटुम्ब के पद के लिए उपयुक्त (पुत्र) कौन होगा।' इस चिन्ता से वह सेठ (अपने) तीनों पुत्रों की परीक्षा के लिए अपने स्वजन–बन्धुओं को और प्रमुख नागरिक जनों को (अपने) घर में निमन्त्रण देकर (तथा) विधिपूर्वक भोजन कराकर उनके समक्ष कहता है–

4. 'मेरे इन तीनों पुत्रों में कुटुम्ब–पद के लिए योग्य कौन है?' (उसके द्वारा) ऐसा कहने पर उन्होंने कहा– 'तुम ही विशेष रूप से जानते हो– कौन योग्य है?'

5. 'यदि ऐसा है तो आपके समक्ष ही मैं (इनकी) परीक्षा करता हूँ।' ऐसा कहकर नागरिकों के समक्ष (उसने) उन तीनों पुत्रों को बुलवाया।

6. प्रत्येक–प्रत्येक (पुत्र) को सोने की लाख मुद्राएँ देकर व्यापार (करने) के लिए इनको उनके ही समक्ष विदेशों में भेज दिया।

7–8. तब उन पुत्रों में से एक पुत्र के द्वारा विचार किया गया– 'हमारे यह पिता धर्मप्रिय, अच्छा आचरण करने वाले और प्रायः दूरदर्शी हैं। प्राण–त्याग होने पर भी हमारे ऊपर कभी भी विपरीत नहीं सोचते हैं। अतः निश्चित ही यह (व्यापार को भेजना) किसी भी कारण (उद्देश्य) से होना चाहिए।'

9. इस प्रकार सोचकर उस (पुत्र) के द्वारा अपनी बुद्धि से किसी प्रकार से वैसा व्यापार किया गया कि जिससे वर्ष के अन्त में वह (मूल पूँजी) बढ़ाकर एक करोड़ कर ली गयी।

10. दूसरे पुत्र के द्वारा यह सोचा गया कि 'मेरे पिता का पर्याप्त धन है। इसलिए कष्टों के जाल में (व्यापार में) अपने को व्यर्थ ही क्यों डालूँ?'

11. 'यदि सब कुछ ही मौज (खर्च) करलूँ तो वहाँ जाकर कैसे मुँह दिखाऊँगा? इसलिए मूलधन को सुरक्षित रखकर शेष (मुनाफा आदि) को खा डालता हूँ अधिक क्या सोचता?'

12. तीसरे अयोग्य पुत्र के द्वारा अपने मन में विचार किया गया कि– 'करोड़ों का स्वामी मेरा पिता बुढ़ापे के दोषों से युक्त हो गया है। जैसे कि–

BSER

13. बुढ़ापे में मनुष्यों के प्रायः तृष्णा, लज्जा का नाश, भय की बहुलता, विपरीत बोलना आदि दोष उत्पन्न हो जाते हैं।

14 अन्यथा वैभव (सम्पन्न) होते हुए (हमारे पिता) हम लोगों को विदेश में क्यों भेजते?' ऐसा सोचकर वर्ष के अन्त तक (उसने) सब धन खा डाला (खर्च कर दिया)।

15. अपने निश्चित समय पर सभी (स्वजन) और वे वणिक्–पुत्र एकत्र हुए। फिर से उसी प्रकार सेठ के द्वारा भोजन आदि को कराकर स्वजन आदि के सामने प्रथम पुत्र को कुटुम्ब–पद पर, दूसरे (पुत्र) को भण्डार–पद पर और तीसरे (पुत्र) को खेती आदि कार्यों में लगा दिया गया।

## अभ्यास

**1. शब्दार्थ :**

| | | |
|---|---|---|
| पुरसेट्ठि | = | नगरसेठ |
| महं | = | मेरा |
| तिण्हं | = | तीन |
| परिक्खण | = | परीक्षा |
| सयण | = | स्वजन |
| नायरय | = | नागरिक |
| समक्खं | = | सामने |
| जोग | = | योग्य |
| पत्तेयं | = | प्रत्येक |
| दविणजाय | = | स्वर्णमुद्रा |
| ववहार | = | व्यापार |
| पिया | = | पिता |
| विरूवं | = | विपरीत |
| किलेस | = | कष्ट |
| मुहाए | = | व्यर्थ में |
| तिट्ठा | = | तृष्णा |
| वुड्ढत्तण | = | बुढ़ापा |
| तइअ | = | तीसरा |

**2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –**

BSER

| (क)शब्दरूप | मूलशब्द | विभक्ति | वचन | लिंग |
|---|---|---|---|---|
| विहिणा | ......... | ......... | ......... | ......... |
| मईए | ......... | ......... | ......... | ......... |
| दोसेहिं | ......... | ......... | ......... | ......... |
| विहवे | ......... | ......... | ......... | ......... |

| (ख) संधिवाक्य | विच्छेद | संधिकार्य |
|---|---|---|
| तेणुत्तं | तेण + उत्तं | अ + उ +उ |
| समक्खमिमे | समक्खं + इमे | ............... |
| चिंतियमेगेणमम्हमेस | चिंतियं+एगेणं+अहं+एस | अनुस्वार को म |
| अम्हारगमुवरि | ........ + ...... | ............... |
| भोयणईयं | भोयण + आईयं | ............... |

| (ग) समासपद | विग्रह | समासनाम |
|---|---|---|
| गोरवट्ठाणं | गोरवस्स + ट्ठाणं | भठी तत्पुरुा |
| पुरसेट्ठी | ...... + .... | ............... |
| किलेसजाले | किलेसाण + जाले | ............... |
| वुड्ढत्तणदोसेहिं | ...... + .... | ............... |
| भंडारपए | ...... + .... | ............... |

| (घ) क्रियारूप | मूलक्रिया | काल | पुरुष | वचन |
|---|---|---|---|---|
| परिक्खेमि | ....... | ....... | ....... | ....... |
| जायन्ति | ....... | ....... | ....... | ....... |
| भक्खेमि | ....... | ....... | ....... | ....... |

| (ङ) कृदन्त | अर्थ | पहिचान | मूलक्रिया | प्रत्यय |
|---|---|---|---|---|
| निमंतिउं | निमन्त्रण कर | सं. कृ. | निमंत | इ + उ |
| पेसिया | ........... | ........ | ........ . | ....... |
| पूरिया | पूरी कर ली | भू. कृ. | पूर | इ + य |
| रक्खिय | ........ | ........ | ........ | ....... |
| परिभाविय | विचार कर | सं. कृ. | परिभाव | इ + य |

**3. वस्तुनिष्ठ प्रश्न**

BSER

**सही उत्तर का क्रमांक कोष्ठक में लिखिए –**

1. नयसार सेठ ने अपने पुत्रों को बुलाया था –

(क) ईनाम देने के लिए (ख) परीक्षा करने के लिए

(ग) विदेश भेजने के लिए (घ) सलाह करने के लिए ( )

2. पहले पुत्र ने मूल पूँजी को –

(क) खा लिया (ख) सुरक्षित रखा

(ग) बढ़ाकर 1 करोड़ कर लिया (घ) दान दे दिया

( )

**4. लघुत्तरात्मक प्रश्न**

**प्रश्नों के उत्तर एक–एक वाक्य में लिखिए –**

1. नयसार अपने पुत्रों की परीक्षा किस लिए करना चाहता था?
2. तीसरे पुत्र ने अपने बूढ़े पिता के सम्बन्ध में क्या सोचा?
3. परिवार के प्रमुख का पद किस पुत्र को और क्यों मिला?

**5. निबन्धात्मक प्रश्न एवं विशदीकरण**

(क) इस पाठ का सार अपने शब्दों में लिखिए।

(ख) कुशलपुत्र के विचार अपने शब्दों में लिखिए।

(ग) गाथा नं. 10 एवं 11 का अर्थ संदर्भ सहित समझाकर लिखिए।

BSER

## पाठ –4

## साहसी अगडदत्तो

**पाठ–परिचय :**

उत्तराध्ययनसूत्र पर आचार्य नेमिचन्दसूरि की सुखबोधा टीका में से 12 कथाओं का सम्पादन एवं प्रकाशन मुनि श्री जिनविजय ने प्राकृतकथा–संग्रह नाम से किया है। उन्हीं कथाओं में से यह अगडदत्त की कथा का एक अंश यहाँ प्रस्तुत है।

अगडदत्त कथा एक प्रचलित लोककथा है। चौथी शताब्दी में लिखित 'वसुदेवहिण्डी' नामक प्राकृत ग्रन्थ में यह कथा मूलरूप में मिलती है। उसके बाद कई लेखकों ने इसे लिखा है। प्रस्तुत कथांश में अगडदत्त के उस साहस–कार्य का वर्णन है, जिसमें उसने एक मदोन्मत हाथी को अपने वश में किया है। उसके इस कार्य को देखकर नगर के राजा ने उसका सम्मान किया।

**अन्नंमि दिणे सो राय–नन्दणो वाहियाए मग्गेणं।**
**तुरयारूढो वच्चइ ता नयरे कलयलो जाओ।।1।।**

**किं चलिउ व्व समुद्दो किं वा जलिओ हुयासणो घोरो।**
**किं पत्तं रिउ–सेन्नं तडि–दण्डो निवडिओ किं वा।।2।।**

**मिण्ठेण वि परिचत्तो मारेन्तो सोण्ड–गोयरं पत्ते।**
**सवडं मुहं चलन्तो कालो व्व अकारणे कुद्धो।।4।।**

**पट्ट–पय–बन्ध–रज्जू संचुण्णिय–भवण–हट्ट–देवउलो।**
**खण–मेत्तेण पयण्डो सो पत्तो कुमर–पुरओ त्ति।।5।।**

**तं तारिस–रूव–धरं कुमरं दट्ठूण नायर–जणेहिं।**
**गहिर–सरेणं भणिओ ओसर ओसर करि– पहाओ।।6।।**

**कुमरेण वि निय–तुरयं परिचइऊणं सुदक्ख–गइ–गमणं।**
**हक्कारिओ गइन्दो इन्द–गइन्दस्स सारिच्छो।।7।।**

**सुणिउं कुमार–सद्दं दन्ती पज्झरिय–मय–जल– पवाहो।**
**तुरिओ पहाविओ सो कुद्धो कालो व्व कुमरस्स।।8।।**

BSER

कुमरेण य पाउरणं संवेल्लेऊण हिट्ठ–चित्तेणं।
धावन्त–वारणस्स सोण्डापुरओ उ पक्खित्तं।।9।।

कोवेण धमधमेन्तो दन्तच्छोभे य देइ सो तम्मि।
कुमरो वि पिट्ठभाए पहणइ दढ–मुट्ठि–पहरेणं।।10।।

ता ओधावइ धावइ चलइ खलइ परिणओ तहा होइ।
परिभमइ चक्क–भमणं दोसेणं धमधमेन्तो सो।।11।।

अइव महन्तं वेलं खेल्लावऊण तं गयं पवरं।
नियय–वसे काऊणं आरूढो ताव खन्धम्मि।।12।।

अह तं गइन्द–खेड्डं मणोहरं सयल–नयर–लोयस्स।
अन्तेउर–सरिसेणं पलोइयं नरवरिन्देणं।।13।।

दट्ठुं कुमरं गय–खन्ध–संठियं सुरवइं व सो राया।
पुच्छइ निय–भिच्च–यणं को एसो गुणनिही बालो।।14।।

तेएणं अधिमयरो सोमत्तणएण तह य निसिनाहो।
सव्व–कलागम–कुसलो वाई सूरो सुरूवो य।।15।।

को चित्तेइ मऊरं गइं च को कुणइ रायहंसाणं।
को कुवलयाण गन्धं विणयं च कुल–प्पसूयाणं।।16।।

साली भरेण तोएण जलहरा फलभरेण तरु–सिहरा।
विणएण य सप्पुरिसा नमन्ति नहु कस्स वि भएण।।17।।

'''

**हिन्दी**

1. किसी एक दिन घोड़े पर चढ़ा हुआ वह राजपुत्र (अगडदत्त) बाहर के मार्ग से जा रहा था। तभी नगर में कोलाहल हो गया।

2. समुद्र की तरह क्या चला? अथवा क्या भयंकर अग्नि जल उठी ? क्या शत्रु की सेना आ गयी ? अथवा क्या बिजली का दण्ड (वज्रपात) गिर पड़ा है?



BSER

3. इसी बीच में अचानक आश्चर्य मन वाले कुमार के द्वारा सांकल सहित खम्भे को उखाड़कर आता हुआ पागल मद–हाथी देखा गया।

4. महावत से रहित, सूँड के सामने आने वालों को मारता हुआ, मुख के सामने चलते हुए काल की तरह, अकारण क्रोधी।

5. पैर में बंधी हुई रस्सी को तोड़ता हुआ, भवनों, बाजारों और मंदिरों को चूर्ण करता हुआ प्रचंड वह हाथी क्षणमात्र में कुमार के सामने पहुँच गया।

6. उस प्रकार के रूप को धारण करने वाले उस हाथी और कुमार को देखकर नागरिक लोगों के द्वारा गंभीर स्वर से कहा गया– 'हाथी के रास्ते से हट जाओ! हट जाओ!!'

7. सुन्दर गति से गमन करने वाले अपने घोड़े को छोड़कर कुमार के द्वारा इन्द्र के हाथी ऐरावत के समान वह हाथी ललकारा गया।

8. कुमार के शब्द को सुनकर मद–जल के प्रवाह को झराने वाला, क्रुद्ध यमराज की तरह वह हाथी कुमार की तरफ शीघ्र दौड़ा।

9. किन्तु प्रसन्नचित्त कुमार के द्वारा दुपट्टे को लपेटकर (उसे) दौड़ते हुए हाथी की सूँड के सामने फेंका गया।

10. क्रोध से धम–धमाता हुआ (वह हाथी) दाँत से (कुमार पर) प्रहार करता है और वह कुमार उस हाथी के पिछले भाग पर दृढ़ मुष्टि के प्रहार से चोट करता है।

11. तब (वह हाथी) पलटता है, दौड़ता है, लड़खड़ाता है तथा झुक जाता है। क्रोध से धाम–धमाता हुआ वह चक्र–भ्रमण की तरह घूमता है।

12. अति बहुत समय तक उस श्रेष्ठ हाथी को (कई चक्कर) खिलवाकर अपने वश में करके (वह कुमार) तभी उसके कन्धे पर चढ़ गया।

13. और नगर के सभी लोगों के लिए मनोहर उस गज–क्रीड़ा को अन्तःपुर (रनिवास) के साथ राजा ने देखा।

14.–15. वह राजा हाथी के कन्धे पर स्थित इन्द्र की तरह उस कुमार को देखकर अपने परिजनों को पूछता है– 'गुणों का खजाना, तेज से सूर्य एवं सौम्यता से चन्द्रमा की तरह, सभी कलाओं की प्राप्ति में कुशल, बुद्धिमान, वीर

एवं रूपवान यह बालक (राजकुमार) कौन है?' (उसे मेरे पास लाओ)।

96. मयूर को कौन चित्रित करता है और राजहंसों की गति को कौन बनाता है? कौन कमलों की सुगन्ध को तथा अच्छे कुल में उत्पन्न व्यक्ति की विनय को (कौन बनाता है)?

17. गुच्छों के भार से धान्य के पौधे, पानी से मेघ, फलों के भार से वृक्षों के शिखर और विनय से सज्जन पुरुष झुक (नम्र) जाते हैं, किन्तु किसी के भय से नहीं झुकते हैं।

**अभ्यास**

**1. शब्दार्थ :**

| | | |
|---|---|---|
| कलयल | = | कोलाहाल |
| हुयासण | = | अग्नि |
| घोर | = | भयंकर |
| रिउसेन्नं | = | शत्रु सेना |
| तडिदण्डो | = | वज्र |
| वारण | = | हाथी |
| मिण्ठ | = | महावत |
| सोण्ड | = | सूँड |
| काल | = | मृत्यु |
| सवड | = | सामने |
| हट्ट | = | बाजार |
| पयण्ड | = | प्रचण्ड |
| सर | = | स्वर |
| तुरये | = | घोड़ा |
| वेला | = | समय |
| सुरवइ | = | इन्द्र |
| मही | = | पृथ्वी |
| जलहर | = | बादल |

**2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –**



BSER

| (क)शब्दरूप | मूलशब्द | विभक्ति | वचन | लिंग |
|---|---|---|---|---|
| नयरे | ......... | ......... | ......... | ......... |
| सेन्नं | ......... | ......... . | ......... | ......... |
| रज्जू | ......... | ......... | ......... | ......... |
| पहाओ | पह. | पंचमी | ए.व. | नपु. |
| गइन्दस्स......... | | ......... | ......... | ......... |
| गयं | ......... | ......... | ......... | ......... |
| तोएण | ......... | ......... | ......... | ......... |

| (ख) संधिवाक्य | विच्छेद | संधिकार्य |
|---|---|---|
| तुरयारूढो | तुरय + आरूढो | .............. |
| निवाडियालाण | ...... + ..... | .............. |
| कलागम | ...... + ..... | .............. |

| (ग) समासपद | विग्रह | समासनाम |
|---|---|---|
| रिउसेन्नं | रिउणो+सेन्नं | ष. तत्पुरुष |
| रायनन्दणो | ..... + ..... | .............. |
| तरुसिहरा | ..... + ..... | .............. |
| निसिनाहो | निसीह+ नाहो | .............. |
| गुणनिही | ..... + ..... | .............. |

| (घ) क्रियारूप | मूलक्रिया | काल | पुरुष | वचन |
|---|---|---|---|---|
| वच्चइ | ....... | ....... | ....... | ....... |
| ओसर | ओसर | आज्ञा | म.पु. | ए.व. |
| देइ | दा | व. का. | अ.पु. | ए.व. |
| परिभमइ .... | | .... | .... | .... |
| चिन्तेइ | .... | ..... | .... | .... |

| (ङ) कृदन्त | अर्थ | पहिचान | मूलक्रिया | प्रत्यय |
|---|---|---|---|---|
| मारेन्तो | मारता हुआ | व. कृ. | मार | ए + न्त |
| पलोइयं | देखा | भू.कृ. | अनियमित | ......... |
| दट्ठु | देखकर | सं. कृ. | ........ | ........ |
| चिन्तियं | सोचा | भू.कृ. | चिन्त | इ+य |

BSER

### 3. वस्तुनिष्ठ प्रश्न

**सही उत्तर का क्रमांक कोष्ठक में लिखिए—**

1. नगर में कोलाहल का कारण था —

(क) राजकुमार का आगमन (ख) शत्रु की सेना

(ग) पागल हाथी (घ) बिजली का गिरना ( )

2. हाथी पर चढ़ा हुआ वह कुमार था—

(क) महावत की तरह (ख) राजा की तरह

(ग) साधु की तरह (घ) इन्द्र की तरह ( )

### 4. लघुत्तरात्मक प्रश्न

**प्रश्नों के उत्तर एक—एक वाक्य में लिखिए —**

1. पागल हाथी ने नगर को क्या नुकसान पहुँचाया?
2. राजा ने विजयी कुमार को देखकर क्या पूछा?
3. विनय से सज्जन पुरुष किसकी तरह झुक जाते हैं ?

### 5. निबन्धात्मक प्रश्न एवं विशदीकरण

(क) अगडदत्त और हाथी की लड़ाई का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।

(ख) गाथा नं. 14, 15, 16 एवं 17 का अर्थ संदर्भ सहित समझाकर लिखो।

BSER

## पाठ –5

## अहिंसओ बाहुबली

**पाठ–परिचय :**

प्राकृत का सर्वप्रथम चरित–काव्य पउमचरियं है। महाकवि विमलसूरि ने ईसा की लगभग 2–3 री शताब्दी में इसे लिखा था। इस ग्रन्थ में ऋषभदेव, भरत, बाहुबली, रामचन्द्र, हनुमान आदि महापुरुषों का जीवन–चरित वर्णित है। रामकथा पर प्राकृत भाषा में लिखा जाने वाला यह पहला ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का सम्पादन डॉ. हर्मन जेकोबी एवं मुनि पुण्यविजय ने किया है।

भरत और बाहुबली ऋषभदेव के दो पुत्र हैं। दोनों अलग–अलग प्रान्तों के राजा थे, किन्तु भरत ने दिग्विजय करने के उद्देश्य से बाहुबली को भी अपने अधीन करना चाहा। इसके लिए भरत युद्ध करने के लिए बाहुबली के राज्य में पहुँचा। तब अपने राज्य की रक्षा करने के लिए बाहुबली ने भरत का सामना किया, किन्तु युद्ध में हजारों निरपराधा व्यक्तियों की हत्या को देखकर बाहुबली ने भरत के सामने यह प्रस्ताव रखा कि हम दोनों आपस में शारीरिक युद्ध करके हारजीत का निर्णय कर लें। बाहुबली का यह प्रस्ताव इस देश में सबसे पहली अहिंसक–संधि थी, जिसने देश–रक्षा के साथ–साथ प्राणी–रक्षा भी की।

**तक्खसिलाए महप्पा बाहुबली तस्स निच्च–पडिकूलो।**
**भरह–नरिन्दस्स सया न कुणइ आणा–पणामं सो।।1।।**

**अह रुट्ठो चक्कहरो तस्सुवरिं सयल–साहण–समग्गो।**
**नयरस्स तुरियचवलो विणिग्गओ सयल–बल–सहिओ।।2।।**

**पत्तो तक्खसिलपुरं जय–सद्दुघुट्ठ–कलयलारावो।**
**जुज्झस्स कारणत्थं सन्नद्धो तक्खणं भरहो।।3।।**

**बाहुबली वि महप्पा, भरहनरिन्दं समागयं सोउं।**
**भड–चडयरेण महया, तक्खसिलाओ विणिज्जाओ।।4।।**

**बल–दप्प–गव्वियाणं उभयबलाणं रसन्ततूराणं।**
**आभिट्टं पर–मरणं नच्चन्त–कबन्ध–पेच्छणयं।।5।।**

भणिओ य बाहुबलिणा चक्कहरो किं वहेण लोयस्स।
दोण्हं पि होउ जुज्झं दिट्ठि–मुट्ठीहि रणमज्झे।।6।।

एवं च भणियमेत्ते दिट्ठीजुज्झं तओ समब्भडियं।
भग्गो य चक्खुपसरो पढमं च निज्जिओ भरहो।।7।।

पुणरवि भुयासु लग्गा एक्केक्कं ढिण–दप्प–माहप्पा।
चल–चलण–पीण–पेल्लण–करयल–परिहत्थविच्छोहा।।8।।

अद्ध–तडिजोत्तबन्ध–अवहत्थुव्वत्त–करण–निम्मविया।
जुज्झन्ति सवडहुत्ता अभग्गमाणा महापुरिसा।।9।।

एवं भरहनरिन्दो निहओ भुयविक्कमेण संगामे।
तो मुयइ चक्करयणं तस्स वहत्थं परम–रुट्ठो।।10।।

विणिवायण–असमत्थं गन्तूण सुदरिसणं पडिनियत्तं।
भुयबल–परक्कमस्स वि संवेगो तक्खणुप्पन्नो।।11।।

जंपइ अहो अकज्जं जं जाणन्ता वि विसयलोभिल्ला।
पुरिसा कसायवसगा करेन्ति एक्केक्कमविरोहं।।12।।

छारस्स कए नासन्ति चन्दणं मोत्तियं च दोरत्थे।
तह मणुय–भोग–मूढा नरा वि नासन्ति देविड्ढिं।।13।।

'''

## हिन्दी

1. तक्षशिला में हमेशा से राजा भरत का विरोधी महान् बाहुबली (था)। वह उसकी आज्ञा के अनुसार सदा (उसे) प्रणाम नहीं करता था।

2–3. इसके बाद उसके ऊपर क्रोधी चक्रधर भरत) सम्पूर्ण साधनों से युक्त (तथा) समस्त सेना के साथ शीघ्र गति वाला (वह) नगर से निकला। 'जय' शब्द के उद्घोष की कलकल की आवाज (से युक्त) वह भरत तक्षशिला पुर की पहुँचा। (और) उसी क्षण युद्ध के लिए तैयार हो गया।

4. महान् बाहुबली भी आये हुए भरत राजा को सुनकर सुभटों के बड़े समूहों के साथ तक्षशिला से निकला।



BSER

5. बल के घमण्ड से गर्वित (तथा) बजते हुए रणवाद्यों वाली दोनों सेनाओं का, नाचते हुए धड़ों से दर्शनीय भीषण मरण प्रारम्भ हुआ।

6. और (तब) बाहुबली के द्वारा भरत (को) कहा गया– 'लोगों के वध से क्या लाभ ? युद्धभूमि के बीच में (हम) दोनों का दृष्टि एवं मुष्टि द्वारा ही युद्ध हो जाय।'

7. तब इस प्रकार कहने मात्र पर (वे) दृष्टि–युद्ध लड़ने लगे। और चक्षु का प्रसार पहले भग्न्न करने वाला (पलक झपकाने वाला) भरत (बाहुबली के द्वारा) जीत लिया गया।

8–9. फिर अत्यन्त दर्प की धारण करने वाले, एक–दूसरे की भुजाओं में गुथे हुए, चंचल पैरों की तीव्र गति से और हथेलियों को चतुराई से लड़ाने वाले, आधी (चमकी हुई) बिजली की जीत के बन्धन की तरह मारने के लिए उठे हुए हाथों के विपरीत दाँव–पेंच को बनाने वाले, न टूटने (झुकने) वाले (वे दोनों) महापुरुष आमने–सामने होकर (मुष्टि) युद्ध करते हैं।

10. इस प्रकार (दूसरे) युद्ध में भी भुजाओं के बली (बाहुबली) द्वारा राजा भरत जीत लिये गये। तब अत्यन्त क्रोधी (भरत) उस (बाहुबली) के वध के लिए (उसके ऊपर) चक्र–रत्न को छोड़ता है।

11. जाकर (बाहुबली को) मारने में असमर्थ सुदर्शनचक्र (भरत के पास) वापस लौट गया। उसी क्षण बाहुबली को वैराग्य उत्पन्न हो गया।

12. (बाहुबली) कहता है–'आश्चर्य है, जो विषयों में लोभी (और) कषायों (दुष्प्रवृत्तियों) के वशीभूत पुरुष बिना विरोध (वैर) के भी एक–दूसरे का अकाज (अनिष्ट) करते हैं।

13. (जैसे व्यक्ति) राख के लिए चन्दन और डोरे के लिए मोती को नष्ट करते हैं, वैसे ही मानव–भोगों में मूढ मनुष्य (जीवन की) श्रेष्ठ उपलब्धियों को (तुच्छ वस्तुओं के लिए) नाश करते हैं।

## अभ्यास

**1. शब्दार्थ :**

| | | |
|---|---|---|
| महप्पा | = | महान् |
| पडिकूल | = | विरोधी |
| आणा | = | आज्ञा |
| चक्कहर | = | चक्रवर्ती |
| साहण | = | सेना |
| तुरिय | = | शीघ्र |
| सयल | = | समस्त |
| उग्घुट्ठ | = | उद्घोष |



BSER

| | | |
|---|---|---|
| जुज्झ | = | युद्ध |
| चडयर | = | समूह |
| बल | = | सेना |
| पेच्छणय | = | दर्शनीय |
| चक्खु | = | आँख |
| भुया | = | बाँह |
| परिहत्थ | = | निपुण |
| अवहत्थ | = | उठा हाथ |
| उव्वत्तकरण | = | दावपेंच |
| सवडहुत्ता | = | आमने–सामने |

**2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –**

| **(क)शब्दरूप** | **मूलशब्द** | **विभक्ति** | **वचन** | **लिंग** |
|---|---|---|---|---|
| तक्खसिलाए | ......... | .......... | ........ | ......... |
| नयरस्स | ......... | .......... | ....... | ......... |
| बलाणं | ......... | ......... | ......... | ........ |
| मुट्ठीहि | ......... | ......... | ......... | ......... |
| संगामे | ......... | ......... | ......... | ......... |

| **(ख) संधिवाक्य** | **विच्छेद** | **संधिकार्य** |
|---|---|---|
| तस्सुवरि | ...... + ..... | ............... |
| सद्दु घुट्ठ | ...... + ..... | ............... |
| तक्खणुप्पन्नो | ...... + ..... | ............... |
| एक्केक्कमविरोहं | एक्क+एक्कं+अविरोहं | ............. |
| दोरत्थे | दोर + अत्थे | ............... |

| **(ग) समासपद** | **विग्रह** | **समासनाम** |
|---|---|---|
| बलदप्पगव्वियाण | बलदप्पेण+गव्वियाणं | तत्पुरुष |
| बलदप्प | बलस्स+दप्प | ष.त. |
| भुयविक्कमेण | भुयस्स+विक्कमेण | ................. |
| विसयलोभिल्ला | विसयस्स+लोभिल्ला | ................. |

| **घ) क्रियारूप** | **मूलक्रिया** | **काल** | **पुरुष** | **वचन** |
|---|---|---|---|---|
| **होउ** | **हो** | **इच्छा** | **अ.पु.** | ए.व. |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| जुज्झन्ति | ...... | ...... | ...... | ...... |
| मुयइ | ...... | ...... | ...... | ...... |
| करेन्ति | ...... | ...... | ...... | ...... |

**(ङ)**

| **कृदन्त** | **अर्थ** | **पहिचान** | **मूलक्रिया** | **प्रत्यय** |
|---|---|---|---|---|
| विणिग्गओ | निकला | भू.कृ. | अनियमित | ..... |
| सोउं | सुनकर | स. कृ. | सुअ | उं |
| नच्चन्त | नाचते हुए | व.कृ. | नच्च | न्त |
| निज्जिओ | जीत लिया गया | भू. कृ. | अनियमित | ..... |

**3. वस्तुनिष्ठ प्रश्न**

**सही उत्तर का क्रमांक कोष्ठक में लिखिए –**

1. बाहुबली रहता था–
   (क) उज्जैनी में (ख) अयोध्या में
   (ग) तक्षशिला में (घ) भरत के साथ ( )
2. भरत ने बाहुबली के वध के लिए छोड़ा–
   (क) बाण (ख) पागल हाथी
   (ग) चक्ररत्न (घ) भाला ( )

**4. लघुत्तरात्मक प्रश्न**

**प्रश्नों के उत्तर एक–एक वाक्य में लिखिए –**

1. भरत और बाहुबली में युद्ध क्यों हुआ?
2. सैनिकों के वध को बचाने के लिए बाहुबली ने क्या प्रस्ताव रहा?
3. युद्ध के अन्त में बाहुबली ने क्या विचार व्यक्त किये?

**5. निबन्धात्मक प्रश्न एवं विशदीकरण**

(क) भरत और बाहुबली की कथा अपने शब्दों में लिखिए।

(ख) गाथा नं. 6, 12 एवं 13 का अर्थ संदर्भ सहित समझाकर लिखिए।

BSER

## पाठ –6

## जीवन मुल्लं

**पाठ–परिचय :**

प्राकृत मुक्तक साहित्य में 'वज्जालग्गं' ग्रन्थ का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ग्रन्थ की गाथाएँ व्यक्तिगत रसास्वादन के साथ–साथ लोक–मंगल की भावना से भरी हुई हैं। पुरुषार्थ, ज्ञान, चरित्र, गुण–गरिमा, संगति, मित्रता, स्नेह आदि जीवन–मूल्यों का उद्‌घाटन इस ग्रन्थ की गाथाओं से होता है।

वज्जालग्गं के इसी महत्त्व को देखते हुए दर्शन के प्रोफेसर एवं प्राकृत अध्येता डॉ. कमलचन्द सोगाणी ने 'वज्जालग्ग में जीवन–मूल्य' भाग–1 नामक पुस्तक में इस ग्रन्थ की सौ गाथाओं का मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। उसी से इस पाठ की गाथाएँ चयनित की गयी हैं। इन गाथाओं में कहा गया है कि धैर्यशाली पुरुष अपने कार्य को कभी अधूरा नहीं छोड़ते। ज्ञान से बढ़कर कोई बन्धु नहीं है। चरित्र की महिमा सबसे बढ़कर है। गुणी व्यक्ति हर प्रकार से आदर योग्य है, इत्यादि।

**तं मित्तं कायव्वं जं किर वसणम्मि देसकालम्मि।**
**आलिहिय–भित्ति–बाउल्लयं व न परंमुहं ठाइ।।1।।**

**कीरइ समुद्दतरणं पविसिज्जइ हुयवहम्मि पज्जलिए।**
**आयामिज्जइ मरणं नत्थि दुलंघं सिणेहस्स।।2।।**

**एक्काइ नवरि नेहो पयासिओ तिहुयणम्मि जोण्हाए।**
**जा झिज्जइ झीणे ससहरम्मि वड्ढेइ वड्ढंते।।3।।**

**एमेव कह वि कस्स वि केण वि दिट्ठेण होइ परिओसो।**
**कमलायराण रइणा किं कज्जं जेण वियसन्ति।।4।।**

**सीलं वरं कुलाओ दालिद्दं भव्वयं च रोगाओ।**
**विज्जा रज्जाउ वरं खमा वरं सुट्ठु वि तवाओ।।5।।**

**सीलं वरं कुलाओ कुलेण किं होइ विगयसीलेण।**
**कमलाइ कद्दमे संभवन्ति न हु हुन्ति मलिणाइं।।6।।**

छन्दं जो अणुवट्टइ मम्मं रक्खइ गुणे पयासेइ।
सो नवरि माणुसाणं देवाण वि वल्लहो होइ।।7।।

लवणसमो नत्थि रसो विन्नाण समो य बंधवो नत्थि।
धम्मसमो नत्थि निहि कोहसमो वेरिओ नत्थि।।8।।

सिग्घं आरुह कज्जं पारद्धं मा कहं पि सिढिलेसु।
पारद्ध सिढिलियाइं कज्जाइं पुणो न सिज्झन्ति।।9।।

नमिऊण जं विढप्पइ खलचलणं तिहुयणं पि किं तेण।
माणेण जं विढप्पइ तणं पि तं निव्वुइं कुणइ।।10।।

हंसो मसाणमज्झे काओ जइ वसइ पंकयवणम्मि।
तह वि हु हंसो हंसो काओ काओ च्चिय वराओ।।11।।

सव्वायरेण रक्खह तं पुरिसं जत्थ जयसिरी वसइ।
अत्थमिय चन्दबिंबे ताराहि न कीरए जोण्हा।।12।।

रायंगणम्मि परिसंठियस्स जह कुंजरस्स माहप्पं।
विझसिहरम्मि न तहा ठाणेसु गुणा विसट्टन्ति।।13।।

गुणहीणा जे पुरिसा कुलेण गव्वं वहन्ति ते मूढा।
वंसुप्पन्नो वि धणू गुण–रहिए नत्थि टंकारो।।14।।

बहुतरुवराण मज्झे चन्दणविडवो भुयंगदोसेण।
छिज्झइ निरावराहो साहु व्व असाहुसंगेण।।15।।

'''

BSER

## हिन्दी

1. वह मित्र बनाए जाने योग्य होता है, जो निश्चय ही (किसी भी) स्थान पर (तथा किसी भी) समय में विपत्ति पड़ने पर दीवाल पर चित्रित पुतले की तरह विमुख नहीं रहता है।

2. स्नेह के लिए (इस जगत् में कुछ भी) अलंघनीय (कठिन) नहीं है, समुद्र पार किया जाता है, प्रज्ज्वलित अग्नि में (भी) प्रवेश किया जाता है (तथा मरण) (भी) दिया जाता है (स्वीकार किया जाता है।)

3. तीनों लोकों में केवल अकेले चन्द्र–प्रकाश के द्वारा स्नेह व्यक्त किया जाता है (क्योंकि) जो (वह प्रकाश) क्षीण चन्द्रमा में क्षीण होता है (और) बढ़ते हुए (चन्द्रमा) में बढ़ता है।

4. किसी तरह किसी भी (स्नेही) के लिए किसी भी (स्नेही) के द्वारा देख लिये जाने से परितोष (आनन्द) होता है। इसी प्रकार सूर्य से कमल–समूहों का (स्नेह के अतिरिक्त और) क्या प्रयोजन, जिससे (वे) खिलते हैं ?

5. कुल से शील (चरित्र) श्रेष्ठतर है, तथा रोग से निर्धनता (अधिक) अच्छी है; राज्य से विद्या श्रेष्ठतर है, तथा अच्छे (श्रेष्ठ) तप से क्षमा श्रेष्ठतर है।

6. (उच्च) कुल से शील (चरित्र) उत्तम होता है, विनष्टशील के होने पर (उच्च) कुल के द्वारा क्या लाभ होता है? कमल कीचड़ में पैदा होते हैं, किन्तु मलिन नहीं होते हैं।

7. जो (योग्य व्यक्ति की) इच्छा का अनुसरण करता है, (उसके) मर्म (गुप्त बात) का रक्षण करता है, (उसके) गुणों को प्रकाशित करता है, वह न केवल मनुष्यों का, (अपितु) देवताओं का भी प्रिय होता है।

8. लवण के समान रस नहीं है, ज्ञान के समान बन्धु नहीं है, धर्म के समान निधि नहीं है और क्रोध के समान वैरी नहीं है।

9. कार्य तेजी से करों, प्रारम्भ किये गए कार्य को किसी तरह भी शिथिल मत करो (क्योंकि) प्रारम्भ किये गए (तथा) फिर शिथिल किये गए कार्य सिद्ध (पूरे) नहीं होते हैं।

10. खल–चरण में झुककर जो त्रिभुजन भी उपार्जित किया जाता है, उससे क्या लाभ ? सम्मान से जो तृण भी उपार्जित किया जाता है, वह साख उत्पन्न करता है।

11. यदि हंस मसाण (मरघट) के मध्य में रहता है (और) कौआ कमल–समूह में रहता है, तो भी निश्चित ही हंस, हंस है और बेचारा कौआ, कौआ ही (है)।

12. जहाँ जय–लक्ष्मी रहती है, उस पुरुष की पूर्ण आदर से रक्षा करो। (क्योंकि) चन्द्र–बिंब के अस्त होने पर तारों द्वारा प्रकाश नहीं किया जाता है।

13. जिस तरह राजा के आंगन में स्थित हाथी की महिमा (होती है, किन्तु) विन्ध्य पर्वत के शिखर पर (स्थित हाथी की महिमा) नहीं (होती है), उसी तरह (उचित) स्थानों पर गुण खिलते हैं।

BSER

14. जो पुरुष गुणहीन है, वे मूढ़ (ही) कुल के कारण गर्व धारण करते हैं। (ठीक ही है) बाँस से उत्पन्न धनुष भी रस्सी (गुण) से रहित होने पर टंकार वाला नहीं (होता है)।

15. बहुत बड़े वृक्षों के बीच में सर्प–दोष के कारण चन्दन की शाखा काट दी जाती है, जैसे अपराध रहित भद्र पुरुष दुष्ट–संग के कारण (कष्ट दिया जाता है) ।

## अभ्यास

**1. शब्दार्थ :**

| | | |
|---|---|---|
| वसण | = | विपत्ति |
| बाउल्लय | = | पुतला |
| परंमुह | = | विमुख |
| हुयवह | = | अग्नि |
| भव्वय | = | अच्छा |
| कद्दम | = | कीचड़ |
| छंद | = | इच्छा |
| लवण | = | नमक |
| निव्वुइ | = | सुख |
| मसाण | = | मसान |
| काओ | = | कौआ |
| वराओ | = | बेचारा |
| कुंजर | = | हाथी |
| माहप्पं | = | महिमा |
| धणु | = | धनुष |
| विडव | = | शाखा |
| साहु | = | भद्र व्यक्ति |
| असाहु | = | दुष्ट |

**2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –**

| (क) शब्दरूप | मूलशब्द | विभक्ति | वचन | लिंग |
|---|---|---|---|---|
| वसणम्मि | ......... | ......... | ......... | ........ |
| मरणं | ......... | ........ | ......... | ......... |
| रइणा | ......... | ......... | ......... | ........ |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| कुलाओ | ......... | ......... | ......... | ........ |
| कमलाइ | ......... | ......... | ......... | ......... |
| ताराहि | ......... | ......... | ......... | ........ |

**(ख) संधिवाक्य विच्छेद संधिकार्य**

| संधिवाक्य | विच्छेद | संधिकार्य |
|---|---|---|
| कमलायर | ...... + ..... | ............... |
| रायंगणम्मि | ...... + ..... | ............... |
| निरावराहो | ...... + ..... | ............... |
| वंसुप्पन्नो | ...... + ..... | ............... |

**(ग) समासपद विग्रह समासनाम**

| समासपद | विग्रह | समासनाम |
|---|---|---|
| समुद्दतरणं | ..... + ..... | ............... |
| खलचलणं | ..... + ..... | ............... |
| तिहुयणं | तिहु + यणं | ............... |
| पंकयवणम्मि | ..... + ..... | ............... |
| चंदणविडवो | ..... + ..... | ............... |

**(घ) क्रियारूप मूलक्रिया काल पुरुष वचन**

| क्रियारूप | मूलक्रिया | काल | पुरुष | वचन |
|---|---|---|---|---|
| ठाइ | ...... | ...... | ...... | ...... |
| बड्ढेइ | ...... | ...... | ...... | ...... |
| सिज्झन्ति | ...... | ...... | ...... | ...... |
| छिज्झइ | ...... | ...... | ...... | ...... |
| रक्खह | ...... | ...... | ...... | ...... |

**(ङ) कृदन्त अर्थ पहिचान मूलक्रिया प्रत्यय**

| कृदन्त | अर्थ | पहिचान | मूलक्रिया | प्रत्यय |
|---|---|---|---|---|
| कायव्वं | करना चाहिए | वि. कृ. | का (कर) | यव्व |
| आलिहिय | चित्रित | भू.कृ. | आलिह | इ+य |
| पयासिओ | व्यक्त किया है | भू.कृ. | पयास | इ+अ |
| नमिऊण | झुककर | सं. कृ. | नम | इ+उ |

**पाठ –7**

**3. वस्तुनिषठ प्रश्न** **जीवण–ववहाहारो**

**सही उत्तर का क्रमांक कोष्ठक में लिखिए –**

1. स्नेह व्यक्त किया जाता है–

**पाठ–परिपाठ –7**

(क) सज्जन के द्वारा (ख) चापलूस व्यक्ति के द्वारा

(ग) चन्द्रप्रकाश के द्वारा (घ) कमल द्वारा **जीवण–ववहाहारो** ( )

BSER

2. अपराधरहित भद्रपुरुषों को कष्ट दिया जाता है –

(क) उनके गुणों के द्वारा (ख) दुष्टजनों की संगति के द्वारा

(ग) उनकी निर्धनता के द्वारा (घ) मूर्ख राजा के द्वारा

( )

**4. लघुत्तरात्मक प्रश्न**

**प्रश्नों के उत्तर एक–एक वाक्य में लिखिए –**

1. कौन व्यक्ति मित्र बनाए जाने योग्य होता है?
2. किस व्यक्ति का हमेशा आदर करना चाहिए ?
3. गुण कहाँ पर खिलते हैं?

**5. निबन्धात्मक प्रश्न एवं विशदीकरण**

(क) इस पाठ की प्रमुख शिक्षाओं को अपने शब्दों में लिखो।

(ख) गाथा नं. 4, 7, 8 एवं 14 का अर्थ संदर्भ सहित समझाकर लिखो।

BSER

## पाठ –7
## जीवण–ववहाहारो

**पाठ–परिचय :**

प्राकृत साहित्य अर्धमागधी प्राकृत एवं शौरसेनी प्राकृत में भी उपलब्ध है। इन दोनों का संकलन–ग्रन्थ एक तो 'समणसुत्तं' है, जिसमें से कुछ गाथाएँ 'सिक्खानीई' नामक पाठ में पहले प्रस्तुत की गयी हैं। दूसरा संकलन–ग्रन्थ अर्हत्प्रवचन है, जिसका चयन दर्शन और आगम ग्रन्थों के प्रसिद्ध विद्वान स्व. पं. चैनसुखदास न्यायतीर्थ ने किया था।

ज्ञान का प्रकाश सर्वव्यापी है। विनय का फल सबका कल्याण है। हितकारी और संयत वचन मनुष्य को सुखी करते हैं। सज्जन व्यक्ति की संगति प्रतिष्ठा देती है और दुर्जन की संगति मूल स्वभाव को बदल देती है। गुण कहने से नहीं, अपने आप प्रगट होते हैं और आचरण से ही उनका विकास होता है। क्रोध और मान को त्यागने से जीवन को सार्थक किया जा सकता है, आदि जीवन–व्यवहारों का निर्देश प्रस्तुत पाठ में है।

**णाणुज्जोवो जोवो णाणुज्जोवस्स णत्थि पडिघादो।**
**दीवेइ खेत्तमप्पं सूरो णाणं जगमसेसं।।1।।**

**थेवं थेवं धम्मं करेह जइ ता बहुं न सक्केह।**
**पेच्छह महानईओ बिन्दूहिं समुद्दभूयाओ।।2।।**

**विणएण विप्पहूणस्स हवदि सिक्खा णिरत्थिया सव्वा।**
**विणओ सिक्खाए फलं विणयफलं सव्वकल्लाणं।।3।।**

**जल–चंदण–ससि–मुत्त–चंदमणी तह णरस्स णिव्वाणं।**
**ण करंति कुणइ जह अत्थज्जुयं हिय–मधुर–मिद–वयणं।।4।।**

**कुसुममगंधमिव जहा देवयसेसत्ति कीरदे सीसे।**
**तह सुयणमज्झवासी वि दुज्जणो पूइओ होइ।।5।।**

**दुज्जणसंसग्गीए पजहदि णियगं गुणं खु सुजणो वि।**
**सीयलभावं उदयं जह पजहदि अग्गिजोएण।।6।।**

वायाए अकहन्ता सुजणे चरिदेहि कहियगा होन्ति।
विकहिंतगा या सगुणे पुरिसा लोगम्मि उवरीव।।7।।

संतो हि गुणा अकहिंतस्स पुरिसस्स ण वि य णस्संति।
अकहिंतस्स वि जह गहवइणो जगविस्सुदो तेजो।।8।।

अप्पपसंसं परिहरह सदा मा होह जसविणासयरा।
अप्पाणं थोवन्तो तणलहुदो होदि हु जणम्मि।।9।।

वायाए जं कहणं गुणाण तं णासणं हवे तेसिं।
होदि हु चरिदेण गुणाण कहणमुब्भासणं तेसि।।10।।

किच्चा परस्स णिन्दं जो अप्पाणं ठवेदुमिच्छेज्ज।
सो इच्छदि आरोग्गं परम्मि कडुओसहे पीए।।11।।

सुठ्ठु वि पियो मुहुत्तेण होदि वेसो जणस्स कोधेण।
पधिदो वि जसो णस्सदि कुद्धस्स अकज्जकरणेण।।12।।

माणी विस्सो सव्वस्स होदि कलह–भय–वेर–दुक्खाणि।
पावदि माणी णियदं इह–परलोए य अवमाणं।।13।।

समणस्स जणस्स पिओ णरो अमाणी सदा हवदि लोए।
णाणं जसं च अत्थं लभदि सकज्जं च साहेदि।।14।।'

'''

## हिन्दी

1. ज्ञान का प्रकाश (ही सच्चा) प्रकाश (है, क्योंकि) ज्ञान के प्रकाश की (कोई) रुकावट नहीं है। सूरज थोड़े क्षेत्र को प्रकाशित करता है, (किन्तु) ज्ञान पूरे संसार को।

2. यदि अधिक न कर सको तो थोड़ा–थोड़ा ही धर्म करो। बूँद–बूँद से समुद्र बन जाने वाली महानदियों को देखो

3. विनय से रहित व्यक्ति की सारी शिक्षा निरर्थक हो जाती है। विनय शिक्षा का फल है (और) विनय का फल सबका कल्याण है।

BSER

4. जल, चन्दन, चन्द्रमा, मुक्ताफल, चन्द्रमणि (आदि) मनुष्य को उस प्रकार सुखी नहीं करते हैं, जिस प्रकार अर्थयुक्त, हितकारी, मधुर और संयत वचन (सुखी करते है)।

5. जिस प्रकार गंधरहित पुष्प भी देवता का प्रसाद है, ऐसा मानकर सिर पर रख लिया जाता है उसी प्रकार सज्जन लोगों के बीच रहने वाला दुर्जन भी पूज्यनीय हो जाता है।

6. दुर्जन की संगति से सज्जन भी निश्चय ही अपने गुण को छोड़ देता है। जैसे जल अग्नि के संयोग से (अपने) शीतल–स्वभाव को छोड़ देता है।

7. सज्जन लोग (अपने गुणों को) वाणी से न कहते हुए कार्यों से प्रकट करने वाले होते हैं और अपने गुणों को न कहते हुए वे मनुष्य–लोक में ऊपर उठे हुए हैं।

8. नहीं कहने वाले भी मनुष्य के विद्यमान गुण नष्ट नहीं होते हैं। जैसे (अपने तेज का) बखान न करने वाले सूरज का तेज संसार में प्रसिद्ध है।

9. आत्म–प्रशंसा को हमेशा (के लिए) छोड़ दो, (अपने) यश के विनाश करने वाले मत बनो। क्योंकि अपनी प्रशंसा करता हुआ मनुष्य लोगों में तिनके के समान हल्का हो जाता है।

10. वचन से (अपने) गुणों को जो कहना है, वह उन गुणों का नाश करना होता है और आचरण से गुणों का प्रकट करना उनका विकास करना होता है।

11. जो (व्यति) दूसरे की निन्दाकर अपने की (गुणवानों में) स्थापित करने की इच्छा करता है, वह दूसरों के द्वारा कड़वी औषधि पी लेने पर (स्वयं) आरोग्य चाहता है।

12. क्रोध से मनुष्य का अत्यन्त प्यारा व्यक्ति भी मुहूर्त्त (क्षण) भर में शत्रु हो जाता है। क्रोधी व्यक्ति के अनुचित आचरण से अत्यन्त प्रसिद्ध उसका यश भी नष्ट हो जाता है।

13. घमण्डी व्यक्ति सबका वैरी हो जाता है। मानी व्यक्ति इस लोक और परलोक में कलह, भय, वैर, दुःख और अपमान को अवश्य ही प्राप्त करता है।

14. अभिमान से रहित मनुष्य संसार में स्वजन और जन–सामान्य (सभी) को सदा प्रिय होता है और ज्ञान, यश, धन (आदि) को प्राप्त करता है तथा अपने कार्य को सिद्ध कर लेता है।

## अभ्यास

**1. शब्दार्थ :**

| | | |
|---|---|---|
| खेत्तं | = | क्षेत्र |
| जगं | = | संसार |
| असेसं | = | सम्पूर्ण |

| | | |
|---|---|---|
| सिक्खा | = | शिक्षा |
| विणअ | = | विनय |
| सीस | = | सिर |
| वाया | = | वाणी |
| चरिद | = | आचरण |
| गहवई | = | सूर्य |
| पर | = | दूसरा |
| वेस | = | शत्रु |
| अकज्ज | = | अनुचित |
| करण | = | आचरण |
| णियदं | = | निश्चित |
| सयण | = | स्वजन |
| जस | = | यश |
| अत्थ | = | धन |

**2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए —**

**(क)**

| **शब्दरूप** | **मूलशब्द** | **विभक्ति** | **वचन** | **लिंग** |
|---|---|---|---|---|
| महानईओ | ......... | ......... | ......... | ........ |
| बिन्दूहिं | ......... | ......... | ......... | ......... |
| सिक्खाए | ......... | ......... | ......... | ......... |
| गुणं | ......... | ......... | ......... | ......... |
| गहवइणो | ......... | ......... | ......... | ......... |
| कोधेण | ......... | ......... | ......... | ......... |

**(ख)**

| **संधिवाक्य** | **विच्छेद** | **संधिकार्य** |
|---|---|---|
| णाणुज्जोवो | ...... + ..... | ............... |
| खेत्तमप्पं | ...... + ..... | ............... |
| जगमसेसं | ...... + ..... | ............... |
| कुसुममगंधमिव | ...... + ..... | ............... |
| कहणमुब्भासणं | ...... + ..... | ............... |
| ठवेदुमिच्छेज्ज | ...... + ..... | ............... |

BSER

(ग) **समासपद विग्रह समासनाम**

| समासपद | विग्रह | समासनाम |
|---|---|---|
| विणयफलं | ..... + ..... | ............... |
| दुज्जणसंसग्गी | ..... + ..... | ............... |
| सव्वकल्लाणं | ..... + ..... | ............... |

(घ) **क्रियारूप मूलक्रिया काल पुरुष वचन**

| क्रियारूप | मूलक्रिया | काल | पुरुष | वचन |
|---|---|---|---|---|
| दीवेइ | ..... | ...... | ...... | ...... |
| पेच्छह | ...... | ...... | ...... | ...... |
| चक्खु | आँख | ...... | ...... | ...... |
| हवदि | ...... | ...... | ...... | ...... |
| पजहदि | ...... | ...... | ...... | ...... |
| होदि | ...... | ...... | ...... | ...... |
| णस्सदि | ...... ...... | ...... | ...... | |
| होह | ...... | ...... | ....... | ...... |

(ङ) **कृदन्त अर्थ पहिचान मूलक्रिया प्रत्यय**

| कृदन्त | अर्थ | पहिचान | मूलक्रिया | प्रत्यय |
|---|---|---|---|---|
| अकहंता | न कहते हुए | व. कृ. | कह | न्त |
| ठवेदु | स्थापित करने के लिए | हे. कृ. | ठव | ए+दु |
| पधिदो | प्रसिद्ध | भू. कृ. | पध | इ+द |

**3. वस्तुनिष्ठ प्रश्न**

**सही उत्तर का क्रमांक कोष्ठक में लिखिए –**

1. सारे जग को प्रकाशित करता है –

(क) दीपक (ख) ज्ञान

(ग) सूर्य (घ) चन्द्रमा ( )

2. सभी शिक्षा निरर्थक हो जाती है –

(क) क्रोधी शिष्य की (ख) रोगी शिष्य की

(ग) विनय से रहित शिष्य की (घ) गरीब शिष्य की

( )

**4. लघुत्तरात्मक प्रश्न**

**प्रश्नों के उत्तर एक–एक वाक्य में लिखिए –**

1. दुर्जन की संगति से सज्जन के गुण कैसे बदल जाते हैं?

BSER

2. गुणों का वास्तविक प्रकाशन किससे होता है?

3. क्रोध करने से क्या नुकसान होता है?

**5. निबन्धात्मक प्रश्न एवं विशदीकरण**

(क) पाठ का सार अपने शब्दों में लिखिए।

(ख) गाथा नं. 3, 5, 8 एवं 12 का अर्थ संदर्भ सहित समझाकर लिखिए।

BSER

## पाठ –8
# रत्नत्रय अधिकार

**पाठ–परिचय :**

प्राकृत का प्राचीन साहित्य अर्धमागधी प्राकृत एवं शौरसेनी प्राकृत में भी उपलब्ध है। इन दोनों भाशाओं में रचित आगम–ग्रन्थों से प्रमुख गाथाओं का संकलन कर ''कुन्दकुन्द का कुन्दन'' नामक कृति का प्रकाशन किया गया। इस कृति में आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के ग्रन्थों– समयसार, पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, नियमसार, चारित्त पाहुड, मोक्षपाहुड, व दसभक्तियों से नीतिपरक एवं सुभाषित गाथाओं का संकलन किया गया है। आचार्य कुन्दकुन्द जैन परम्परा में ईसा की लगभग प्रथम शताब्दी के एक अप्रतिम आचार्य हैं। जिन्होंने जैन दर्शन के गुढ़तम रहस्यों के उद्घाटन में अपना जीवन समर्पित किया। उनकी लेखनी से प्रसूत समस्त जैन दर्शन नई दृष्टि को लिए हुए है। यही कारण है कि आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी शौरसेनी आगमिक परम्परा में वस्तु–तत्त्व–विवेचन, अनेकान्तवाद, रत्नत्रय, भेद–विज्ञान जैसे अन्यान्य दार्शनिक चिन्तन को आध्यात्मिकता का जामा पहनाकर प्रस्तुत करते हैं। उनके ग्रन्थों में प्रकीर्तित रत्नत्रय के स्वरूप को अस प्रकार विवेचित किया है।

**अट्ठविहकम्ममुक्के अट्ठगुणड्ढे अणोवमे सिद्धे।**
**अट्ठमपुढवि णिविट्ठे णिट्ठियकज्जे य वंदिमो णिच्चं।।1।।**

**(सिद्धभक्ति–1)**

**मग्गो मग्गफलं ति य दुविहं जिणसासणे समक्खादं।**
**मग्गो मोक्खउवायो तस्स फलं होइ णिव्वाणं ।।2।।** **(नियमसार–2)**

**जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं तेसिमधिगमो णाणं।**
**रागादीपरिहरणं चरणं एसो दु मोक्खपहो।।3।।** **(समयसार–162)**

**दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।**
**ताणि पुण जाण तिण्णिवि अप्पाणं चेव णिच्छयदो।।4।।** **(समयसार–11)**

**हिंसारहिए धम्मे अट्ठारहदोसवज्जिए देवे।**
**णिग्गंथे पव्वयणे सद्दहणं होइ सम्मत्तं।।5।।** **(मोक्षपाहुड–10)**

छुहतण्हभीरुरोसो रागो मोहो चिंता जरा रुजामिच्चू।
सेदं खेद–मदो रइ–विम्हियणिद्दा जणुव्वेगो।।6।। (नियमसार–6)

सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुतं तस्स जाणया पुरिसा।
अन्तरहेऊ भणिदा दंसणमोहस्स खयपहुदी।।7।। (नियमसार–53)

भूदत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मत्त।।8।। (समयसार–15)

जो चत्तारि वि पाए छिंददि ते कम्म मोहबाधकरे।
सो णिस्संको चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।।1।। (समयसार–244)

जो ण करेदि दु कंखं कम्मफलेसु तहय सव्वधम्मेसु।
सो णिक्कंखो चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।।10।। (समयसार–245)

जो ण करेदि दुगुंच्छं चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं।
सो खलु णिव्विदिगिंछो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।।11।। (समयसार–246)

जो हवदि असम्मूढो चेदा सव्वेसु कम्मभावेसु।
सो खलु अमूढदिट्ठी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।।12।। (समयसार–247)

जो सिद्धभत्ति जुत्तो उवगूहणगो दु सव्वधम्माणं।
सो उवगूहणगारी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।।13।। (समयसार–248)

उम्मग्गं गच्छंतं सिवमग्गे जो ठवेदि अप्पाणं।
सो ठिदिकरणेण जुदो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।।14।। (समयसार–249)

जो कुणदि वच्छलत्तं तिण्हेसगूहण मोक्खमग्गम्मि।
सो वच्छलभावजुदो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।।15।। (समयसार–250)

विज्जारहमारूढो मणोरहरएसु हणदि जो चेदा।
सो जिणणाणपहावी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।।16।। (समयसार–251)

अरहंतभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
सुत्तत्थमग्गणत्थं सवणा साहंति परमत्थं।।17।। (सुत्तपाहुड–1)

अरहंते सुहभत्ती सम्मत्तं दंसणेण सुविसुद्धं।
सीलं विसयविरागो णाणं पुण केरिसं भणियं।।18।। (सीलपाहुड–40)

जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरेयणं अमिदभूयं।
जरमरणवाहिहरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणं।।11।। (दंसणपाहुड–17)

चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो।।20।। (पवयणसारो,1–7)

अट्ठे अजधागहणं करुणाभावो य मणुवतिरिएसु।
विसएसु य अप्पसंगो मोहस्संदाणि लिंगाणि।।21।। (पवयणसारो, 1–75)

जिणणाणदिट्ठिसुद्धं पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं।
विदियं संजमचरणं जिणणाणसदेसियं तं पि।।22।। (चारित्तपाहुड–5)

एवं चिय णाऊण य सव्वे मिच्छत्तदोस संकाई।
परिहरि सम्मत्तमला जिणीाणिया तिविहजोएण।।23।।

णिस्संकिय–णिक्कंखिय–णिव्विदिगिंछा अमूढदिट्ठी।
उवगूहणठिदिकरणं वच्छल्ल–पहावणा य ते अटठ।।24।।

तं चेव गुणविसुद्धं जिणसम्मत्तं सुमुक्खठाणाय।
जं चरइ णाणजुत्तं पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं।।25।। (चारित्तपाहुड–6,7,8)

BSER

**दुविहं संजमचरणं सायारं तह हवे णिरायारं।**
**सायारं सग्गंथे परिग्गहा रहिय खलु णिरायासं।।26।।** **(चारित्तपाहुड–20)**

**दंसण वय सामाइय पोसह सच्चित्त रायभत्ते य।**
**बंभारंभ परिग्गह अणुमण उद्दिट्ठ देसविरदो य।।27।।** **(चारित्तपाहुड–21)**

**पंचेवणुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि।**
**सिक्खावय चत्तारि य संजमचरणं च सायारं।।28।।** **(चारित्तपाहुड–22)**

**पंचिंदियसंवरणं पंचवया पंचविंसकिरियासु।**
**दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूविंति।।29।।** **(चारित्तपाहुड–28)**

## हिन्दी

ज्ञानावरणादि आठ प्रकार के कर्मों से मुक्त, अनन्तज्ञानादि आठ गुणों से सम्पन्न, अष्टम पृथ्वी ईशत्प्राग्भार में स्थित और अपने कार्य को पूर्ण करके कृतकृत्य हुए सिद्धपरमेष्ठी की मैं नित्य वन्दना करता हूँ।

1. जिनशासन में मार्ग और मार्ग का फल ये दो प्रकार कहे गये हैं मोक्ष की प्राप्ति का उपाय मार्ग है और उसका फल निर्वाण है।
2. जीवादि पदार्थों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। उनका यथार्थ ज्ञान होना सम्यग्ज्ञान है, रागद्वेषादि से यथार्थ निवृत्त होना सम्यक् चारित्र है। इस प्रकार भेद रूप (तीनों का समुदाय रूप) मोक्ष पथ (मार्ग) है।
3. साधु को सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र सदा सेवन करने योग्य हैं तथा इन तीनों को ही शुद्धात्मा निश्चय से जानो।
4. हिंसा रहित धर्मअठारह दोष रहित देव, निर्ग्रन्थ श्रमण, प्रवचन (समीचीन शास्त्र) के श्रद्धान करने से व्यवहार सम्यग्दर्शन होता है।
5. भूख, प्यास, भय, द्वेष, राग, मोह, चिंता, वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, स्वेद/पसीना, खेद, मद, रति, विस्मय, निद्रा, जन्म और अरति–ये अठारह दोष हैं।
6. जिनसूत्र और उनके जानने वाले पुरुष सम्यक्त्व के निमित्त हैं। दर्शनमोहनीय का क्षय, उपशम आदि अन्तरंग हेतु कहे हैं।
7. भूतार्थ से जाने हुये जीव–अजीव, पुण्य–पाप तथा आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष ये नव सम्यक्त्व हैं।
8. जो आत्मा कर्मबन्ध, मोह तथा बाधा को उत्पन्न करने वाले उन चारों ही मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग रूप पापों को काटता है वह निःशंक सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।

BSER

9. जो आत्मा कर्मों के फल की तथा समस्त धर्मों की कांक्षा नहीं करता वह निःकांक्षित सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

10. जो आत्मा सभी धर्मों–स्वभावों के प्रति जुगुप्सा–ग्लानि नहीं करता है वह निश्चय से निर्विचिकत्सक सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

11. जो आत्मा शुभ या अशुभ कार्मों के द्वारा उपजाये हुये शुभ अशुभ भावों में अमूढ़ एवं यथार्थ दृष्टि वाला होता है वह निश्चय से अमूढ़दृष्टि सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

12. जो आत्मा सिद्धभक्ति से युक्त है और रागादि वैभाविक सभी धर्मों का उपगूहक–नाश करने वाला है वह उपगूहनकारी सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

13. जो उन्मार्ग में जाते हुये अपनी आत्मा को शिवमार्ग में स्थापित करता है वह स्थितिकरण युक्त सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

14. जो आत्मा मोक्षमार्ग में तीर सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र इन तीन साधनों में वात्सल्यभाव से युक्त है उसे सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

15. जो आत्मा विद्यारूपी रथ में आरूढ़ हुआ मन रूपी रथ के वेगों को नष्ट करता है वह जिनेन्द्र भगवान के ज्ञान की प्रभावना करने वाला सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

16. अरहंत भगवान के द्वारा प्रतिपादित है, गणधर देवों के द्वारा सम्यक् प्रकार गुंफित है, आगम के अर्थ का अन्वेषण करना ही जिसका प्रयोजन है, उसे सूत्र कहते हैं। ऐसे सूत्र के द्वारा सम्यग्दृष्टि दिगम्बर साधु परमार्थ को साधते हैं।

17. अरहंत भगवान् में शुभ भक्ति का होना स्म्यक्त्व है। जो सम्यग्दर्शन से विशुद्ध होता है तथा विषयों से विरक्ति का होना शील है। अतएव ये दोनों ही ज्ञान हैं इसके अतिरिक्त ज्ञान किस प्रकार कहा गया है?

18. यह जिनवचन रूपी औषधि विषय सुख का विरेचन करने वाली है। अमृतरूप है, जरा और मरण की व्याधि को हरने वाली है तथा सब दुःखों का क्षय करने वाली है।

19. चारित्र ही धर्म है। जो धर्म है वह समता भाव रूप कहा गया है समता ही मोह और क्षोभ रहित ऐसा आत्मा का परिणाम है।

20. पदार्थ का अयथार्थ श्रद्धान और मनुष्यों और तिर्यंचों के प्रति करुणा का अभाव और विषयों में आसक्ति यह सब मोह के लिंग हैं।

21. प्रथम सम्यक्त्वाचरण चारित्र है जो जिनेन्द्र देव के ज्ञान और दर्शन से शुद्ध है दूसरा संयमाचरण वह भी जिनेन्द्र देव के सम्यग्ज्ञान के द्वारा कहा गया है।

## अभ्यास

**3. वस्तुनिष्ठ प्रश्न**

**सही उत्तर का क्रमांक कोष्ठक में लिखिए –**

1. मोक्षमार्ग का फल है –

(क) संसार का सुख (ख) ज्ञान का सुख

(ग) निर्वाण का सुख (घ) बचपन का सुख ( )

2. श्रावक व्रत के भेद होते हैं –

(क) तीन (ख) पाँच

(ग) बारह (घ) पन्द्रह

( )

**4. लघुत्तरात्मक प्रश्न**

**प्रश्नों के उत्तर एक–एक वाक्य में लिखिए –**

1. समयसार का अर्थ क्या है?
2. गुणव्रत किसके व कितने होते हैं?
3. ''चारित्तं खलु धम्मो'' को परिभाषित कीजिए।
4. सम्यक्त किसे कहते हैं?

**5. निबन्धात्मक प्रश्न एवं विशदीकरण**

(क) इस पाठ का सार अपने शब्दों में लिखिए।

(ख) गाथा नं. 2, 4, 10, 15 एवं 18 का अर्थ संदर्भ सहित समझाकर लिखिए।

(ग) रत्नत्रय के स्वरूप पर एक निबन्ध लिखिए।

BSER